श्री दत्तात्रेयम्

श्री दत्त स्वामि विरचितम्

श्री दत्तात्रेयम्

श्री दत्त स्वामि विरचितम्

प्रकाशन संस्थान
नयी दिल्ली-110002

प्रकाशक
प्रकाशन संस्थान
4268-B/3, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

© 2013 श्री दत्त ज्ञान प्रचार परिषत्। सर्वाधिकार सुरक्षित।

मूल्य : 80.00 रुपये
प्रथम संस्करण : सन् 2014
ISBN : 978-93-82848-72-1

मुद्रक : बी. के. ऑफसेट, दिल्ली-110032

आपके दान के लिए धन्यवाद

श्री दत्त ज्ञान प्रचार परिषत्
ब्रह्मज्ञान और भक्ति के प्रचार के लिए
रेजिस्ट्रेशन क्रमांक 209/2004
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया अकाउंट
क्रमांक 10454992764
यू. टी. आई. बैंक, इंडिया अकाउंट
क्रमांक 069010100148542

श्री दत्त सेवा समीति
भिखारियों के लिए अन्नदान
रेजिस्ट्रेशन क्रमांक 210/2004
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया अकाउंट
क्रमांक 30001015515

संपर्क

श्री. दत्तज्ञान प्रचार परिषत्
मकान नं. 23-11-1/2, ओगिराला गली,
सत्यनारायणपुरम,
विजयवाडा- 520 011 (आंध्र प्रदेश)

डॉ. पी. सूर्यनारायण
फ्लैट # 13, मोहना,
अणुशक्ति नगर,
मुंबई- 400094 (महाराष्ट्र)

डॉ. निखिल कोठुरकर
ए 7- सी, स्टाफ क्वार्टर्स
अमृता विश्वविद्यापीठम्,
एट्टिमडै, कोयंबतूर-
641112 (तमिलनाडु)

डॉ. अन्नपूर्णा सी.
अनुवाद विभाग,
अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय,गांधी हिल्स,
वर्धा- 4420005, (महाराष्ट्र)

ई.मेल: datta_swami@yahoo.co.in
वेबसाइट: www.universal-spirituality.org

कवि परिचय

श्री दत्त स्वामी (जन्नाभट्ल वेणु गोपालकृष्णमूर्ति जी) ने १६ वर्ष की आयु में ही संस्कृत में १०० से अधिक ग्रंथ लिखे। इन ग्रन्थों में आपने आध्यात्मिक स्तर पर, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य के तीन मतों का समन्वय किया। आपने १९ वर्ष की आयु में ही रसायन शास्त्र में पी.एच.डी. की डिगरी प्राप्तकर आचार्य पद पर काम किया। आपके दार्शनिक प्रवचन अंग्रेजी में प्रकाशित १० संस्करणों में हैं। आपके कुछ संस्कृत ग्रंथ तेलुगु में अनुवाद करके प्रकाशित हुए हैं जैसे:- श्री दत्त गुरु भगवद् गीता, श्री दत्तोपनिषद्, श्री कृष्ण भागवतम् आदि। लोगों की दृष्टि में आप भगवान श्री दत्तात्रेय के उपासक हैं, लेकिन आपके आत्मीय भक्त आपको साक्षात श्री दत्तात्रेय का स्वरूप ही मानते हैं।

दशिक श्रीकृष्ण सूर्यनारायण मूर्ति (अजय)

शिष्टला फणि कुमार

विषय-सूची

१. **भूमिका** ३

२. **॥श्री दत्तात्रेयम्॥** ६

३. **श्री दत्तस्वामी विरचित भजन** ८५

- दत्तदेवं गुरुम् ८५
- भज दत्तम् ८६
- दत्तं भावयामि ८६
- श्री दत्तात्रेय एकादश श्लोकी ८६
- श्री दत्त नवरत्न ८९
- श्री दत्ताष्टकं ९०
- भजे दत्त देवम् ९१
- वंदे दत्तात्रेयं ९३

भूमिका

इस ग्रंथ में भगवान श्री दत्तात्रेय की जानकारी के साथ-साथ, ब्रह्मज्ञान और दत्त भक्ति स्तोत्र और श्लोक भी सम्मिलित हैं। यह ग्रंथ ज्ञान-भक्ति का मिश्रित रूप है। इस ग्रंथ के रचयिता श्री दत्त स्वामी के मत के अनुसार, वेदों में बताए गए परब्रह्म, एक ही हैं, जो सृष्टि-स्थिति-लय नामक तीन कार्यों को संपन्न करते हैं। यही तत्व हमें भगवान दत्त के रूप में दिखाई देता है। श्री दत्त (दत्तात्रेय) एक ही व्यक्ति हैं, जिनके तीन मुख हैं (ब्रह्मा-विष्णु-शिव)। ये तीन मुख, जगत के सृष्टि-स्थिति-लय नामक तीन कार्यों को करने वाले त्रिमूर्ति हैं। अत: दत्त स्वरूप में ही वेदों के इस निर्वचन का पूर्ण रूप से समन्वय होता है। अर्थात्, श्री दत्त ही वेद वाक्य के अनुसार, परब्रह्म प्रमाणित होते हैं।

श्री दत्त स्वामी के सिद्धांत के अनुसार मूल परब्रह्म कल्पना से परे (अनूह्य) हैं। परब्रह्म द्वारा आकाश (शून्य) की सृष्टि हुई। आकाश के तीन परिमाण (dimensions) होते हैं: लंबाई चौड़ाई और गहराई। चौथा परिमाण (काल) भी आकाश में ही उपस्थित होता है। हमारी बुद्धि आकाश (काल-युक्त आकाश), या देश-काल, के चार परिमाणों तक ही सीमित है; इन चार परिमाणों से परे रहने वाली किसी भी वस्तु की हम कल्पना तक नहीं कर सकते।

किसी भी वस्तु के सृजन से पहले उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। अत: आकाश की सृष्टि से पहले, आकाश का कोई अस्तित्व नहीं था। एकमात्र परब्रह्म का ही अस्तित्व था।

निश्चय ही आकाश के कोई तत्व (परिमाण) परब्रह्म में नहीं थे। तो आकाश के सृजनकर्ता, परिमाण रहित, परब्रह्म निस्संदेह ही हमारी बुद्धि और कल्पना से परे हैं। अतः परब्रह्म को अकल्पनीय या अनूह्य कहा जाता है।

ये अनूह्य परब्रह्म, जिनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते, स्वयं मनुष्य आकार ग्रहण करके इस लोक में आतें हैं और जीवों को ज्ञान का बोध कराते हैं। ऐसे मनुष्य-आकार ग्रहण किए हुए परब्रह्म (अवतार) ही दत्त कहलाते हैं। इसलिए, दत्त शब्द का सही अर्थ है, श्री कृष्ण जैसे मनुष्य अवतार। मनुष्य अवतार के अंदर रहने वाला जीव, परब्रह्म में विलीन रहता है। इसलिए मनुष्य अवतार के अन्दर, जीव और परब्रह्म में अद्वैत पाया जाता है। एक अलग दृष्टिकोण से, एक ही मनुष्य शरीर में दो वस्तुएं (प्रबल रूप से परब्रह्म और अंश-रूप में जीव) होने के कारण मनुष्य अवतार में विशिष्ट अद्वैत है। एक तीसरे दृष्टिकोण के अनुसार, वास्तव में अकल्पनीय परब्रह्म और सीमित कल्पनीय जीव, ये दो घटक पूरी तरह से भिन्न होने के कारण, मनुष्य अवतार में द्वैत है। अतः इन तीनों मतों (अद्वैत, विशिष्ट अद्वैत और द्वैत) का समन्वय (त्रिमत समन्वय) सिर्फ मनुष्य अवतार के संदर्भ में ही करना संभव है; सामान्य जीव और अकल्पनीय परब्रह्म के संदर्भ में नहीं।

ऐसे अनेक अद्‌भुत ज्ञान विषयों तथा श्री दत्त स्तुति श्लोकों का सम्मिलित रूप, यह ग्रंथ, ज्ञानी लोगों के लिए और भक्तों की आध्यात्मिक साधना के लिए शुरू से लेकर अंत तक "करदीपिका" जैसा उपयोगी होगा।

---अन्नपूर्णा

॥श्री दत्तात्रेयम्॥
श्री दत्तस्वामि विरचितम्

उदात्तै रनुदात्तै श्च, स्वरितै रनुरञ्जितः।
वेदपाठ इवाभासि, त्रिमूर्त्यंशुभि रत्रिज ॥१॥

हे अत्रिपुत्र दत्त! त्रिमूर्तियों के तेजस के साथ तुम उदात्त अनुदात्त और स्वरित नामक तीन स्वरों से रंजित वेद पठन जैसे प्रकाशित हो रहे हो ।

उदयारुणमध्याह्न – तेजस्सायतमोद्युतिः
त्रिवर्णत्रिगुणै र्दत्त!, त्रिकाल इव भानुमान् ॥२॥

दत्त! सुबह लाल रंग जैसे, दिन में सफ़ेद धूप के साथ, शाम को अंधेरे जैसे काले रंग के साथ भासित सूर्य जैसे, सृष्टि स्थिति तथा लय के समय में रजस, सत्त्व और तमस नामक त्रिगुणों से शोभाय मान हो।

सृष्टिस्थितिप्रलयकारण मस्य वेदात्
ब्रह्मैव य स्त्रिमुखसूचितदत्तदेवः
अन्यस्वरूप मसमन्वयहेतुमुक्तं
तस्मात् स एव शरणं मम वेद सिद्धः ॥३॥

वही दत्तदेव परब्रह्म है जो अपने त्रिमुखों से इस सत्य को वेद वचन (यतोवा इमानि) द्वारा यह बता रहे हैं कि इस

जगत के सृष्टि स्थिति और लय का कारण खुद मैं ही हूँ। इस तरह का समन्वय अन्य देवता स्वरुपों में नहीं मिलता। अतः अन्य रुपों को छोड दिया गया। इसलिए वेदों के द्वारा प्राप्त वह दत्त देव ही मेरा शरण्य है।

त्रिमूर्तय स्त्रिकर्माणो,ब्रह्मैकं हि त्रिकर्मकृत्
ऐकमेवेति चाम्नाया, द्दत्तात्रेयसमन्वयः ॥४॥

सृष्टि स्थिति तथा प्रलय नामक तीन काम करने वाले त्रिमूर्ति हैं।'एकमेव' वेद वचन के अनुसार इन तीनों का काम करने वाला एक ही परब्रह्म हैं।तीन मुखों से ये तीनों काम करने वाला, एक रुप होने से श्री दत्तात्रेय स्वरुप में ही यह समन्वय मिल रहा है। इसलिए श्री दत्तात्रेय ही परब्रह्म हैं।

ब्रह्मा त्वमेव जगतो रचनाविधाने
विष्णु स्त्वमेव परिपालनशासनेऽस्य
रूद्र स्त्वमेव विलयज्वलनेऽ प्यमुष्य
वेष स्त्रिधा ऽपि नट ऐक इह त्वमेव॥५॥

इस जगत की रचना पद्धति के अनुसार तुम्हें ब्रह्म, इस जगत की पालन और शासन पद्धति के अनुसार तुम्हें विष्णु और इस जगत के प्रलय का दहन करने में तुम्हें रुद्र के रुप में प्रशंसा कर रहे हैं। इन तीनों पोशाकों में रहने वाले एक ही पात्रधारी (नट) तुम ही हो स्वामी।

हे देवदेव! दयनीयदयापयोधे !
हे भक्तिभावमुनिमान्यमनोनिवृत्ते!
हे वेदवेद्य विदुषामपि वाददूर!,
हे दत्त! चित्त मिद माविश वित्तमत्तम्॥६॥

हे देव देव! हे दयनीयों के दयासागर! हे भक्ति भाव से मान्य मुनियों के मन को भी प्राप्त न होने वाला! हे वेद वेद्य! विदों की चर्चाओं से भी न मिलने वाला! हे दत्ता! वित्त से मदमत्त रहने वाले मेरे इस चित्त में प्रवेश करो।

त्रिमूर्तिवदनोज्ज्वलं त्रिभुज युग्म संशोभितं,
त्रिलोकतलसञ्चरं चरणपादुकाघट्ट्नम्।
चतुश्शुनकसंवृतं विमलधर्मधेनुश्रितं,
महर्षिकुलनायकं नमत दत्तदेवं गुरूम्॥७॥

जो त्रिमूर्तिमुखों से प्रकाशित है, षट् भुजाओं से सुशोभित है, त्रिलोक में संचारण करता है, चरण पादुकाओं की ध्वनि करता है, चार शुनकों सहित रहता है, स्वच्छ धेनु के रुप में रहने वाली धर्म देवता को आश्रय देता है तथा महर्षियों के कुलनायक है उस गुरुदत्त देव को प्रणाम करो।

अत्रेः पुत्रायते यो यतिपति रदितेः पुत्रपत्रश्रिताङ्घ्रिः,
साक्षा दोड्.कारवाच्यत्रिरवविधिहरित्र्यम्बकालम्बनंच।
यो वै वैराग्यभाग्यस्थिरकरकरसन्मुक्तिदायी च मायी,
दत्तात्रेयोऽस्ति सोऽयं मम हृदयसरःक्रीडया ब्रह्महंसः ॥८॥

जो अत्रि मुनि के पुत्र के रुप में बदले हुए, जो यतियों के पति के रुप में हो, जिनके पादपद्मों का आश्रय लिये हुए देवता रुपी पूजा पत्रों का धारण करने वाले, ब्रह्म, विष्णु और शिव रुपी अकार उकार मकारों से निर्मित ॐकार वाच्य और त्रिमूर्तियों के आधार, जो वैराग्य संपदा को स्थिर करने वाले, सत्य तथा मोक्ष को अपने हाथ से प्रदान करनेवाले, माया से युक्त, जो मेरे हृदय रुपी सरोवर में खेलने वाले ब्रह्महंस के रुप में स्थित वह दत्तात्रेय विराज मान हो रहा है।

निरन्तरं मृत्युभयेन कम्पते
मनो मना गप्यभयं न विन्दते ,
क्षणोऽ पि मृत्यु र्निरये ततः परं,
कियांस्तु कालः प्रतिहन्यता मिति॥९॥

यह मन हमेशा मृत्यु भय से कंपित हो रहा है। उसे थोडा सा भी अभय नहीं मिल रहा है। मृत्यु तो क्षणकाल मात्र होने से भी, उसके बाद नरक में कितने समय तक रहना पड़ता है यही सच्चा डर है।

पापानि तापाय कृतस्मृतानि,
कालोऽपि कल्लोलयतीद्धपाशः
कालेऽस्मि चास्मिन् विकलो विमूढ,
स्त्वमन्तराशाकिरणः किलैकः ॥१०॥

हे दत्त! जब किये गये पापकर्म याद आकर पश्चाताप होता है, यम धर्मराज अपने पाश को झमकाते हुए दिखते हैं, तब मन में शोरगुल मचता है। इस प्रकार उस समय में व्याकुल होकर क्या करें? समझ में न आने से मूर्ख बनकर बैठा तो अंतःमन में स्फुरित सिर्फ़ एक ही आशा किरण के रुप में तुम ही बैठे हो।

मृत्यु स्सन्निहितः कराळदशनैःकालस्य ते किङ्कराः,
दृश्यन्ते विकटस्वरप्रहासितै र्भूयः प्रकम्पप्रदाः।
कालेऽस्मिन् कलनीय ऐव हि भवां स्त्राता विधाता हरिः,
कालारिश्च मुखत्रयेण परमब्रह्म त्रयीगोचरम्॥११॥

मृत्यु समीप पहुँचाने वाली बुढापे की दशा आ गयी, यमराज के सेवक डराने वाले बड़े बड़े दांतों के साथ विकट स्वरों की ध्वनि से हंसते हुए बार बार डराते हुए दिख रहे हैं। इस समय में त्रयी विद्या में दिखने वाले परब्रह्म के रूप में तुम ही तीन मुखों के साथ ब्रह्मा, विष्णु शिवात्मक रुपी रक्षक बनकर दर्शन देने वाले होने चाहिए ना।

ऐको देवो ह्यत्रि पुत्रोऽत्र गम्यो,
गन्ताऽ प्येको दत्त कारूण्य लक्ष्यः
मार्गो ऽप्येक स्त्यागकृ दत्त सेवा,
ज्ञेय ज्ञातृ ज्ञान मेत त्रिपुट्याम्॥१२॥

अत्रिपुत्र दत्त भगवान ही ऐकैक गम्य हैं। दत्तकारूण्य ही लक्ष्य के रुप में साधने वाले साधक जीव ही ऐकैक यात्री है। त्याग सहित दत्त सेवा ही ऐकैक मार्ग है। यह ज्ञेय ज्ञाता और ज्ञान नामक त्रिपुटी है।

श्रीदत्तस्मरणं कार्यं, वार्द्धके मरणे रणे,
संसारतरणं मुक्तेः,करणं शरणं परम्॥१३॥

जब वार्द्धक दशा(बुढापा) रुपी मरण रण आया तो संसार तरण, मुक्ति करण तथा परम शरण रुपी श्री दत्त स्मरण करना चाहिए।

दत्तात्रेये सति सति पित र्यस्मदीये दयाळौ,
वात्सल्यांभोनिधिघननिधौ का नु चिन्ता कदाऽपि? ।
अस्मिन्लोके परजगति च प्रोद्धरे देष देवो,
ब्रह्मानन्दे चरतु सततं नूतनं जीवनं मे॥१४॥

घनवात्सल्य सागर, दयालु तथा सत्य रुपी मेरे पिता दत्तात्रेय के रहते हुए कभी भी किसी भी तरह की चिंता क्यों करुँ? ये दत्तदेव इस लोक में और परलोक में मेरा उद्धार करते हैं। अतः नये जीवन हमेशा ब्रह्मानंद में संचरित करें।

त्वमेव मम सद् गुरु स्त्वमसि मे पिता त्वं प्रसू ,
स्त्वमस्य जगतो जनिस्थितिलयस्य सत्कारणम्।
त्वमेव मम सर्व मत्रिभव! दत्तदेव! प्रभो!
समुद्धरतु मा मपार करुणार्णवो यद्भवान्॥१५॥

हे अत्रिपुत्र! दत्तदेवा! प्रभू! तुम्ही मेरे सद्गुरु हो। तुम्ही मेरे पिता और माता हो। इस जगत् के सृष्टि स्थिति लय के सच्चे कारण तुम्हीं हो। तुम अपार करुणा सागर हो। अतः तुम मेरा उद्धार करो।

दत्तात्रेय गुरो! तवैव महिमा सर्वं हि मज्जीविते,
यच्चाभू द्भविता भवत्यपि भवल्लीलाकलोन्मीलितम्।
साहकार मनोमयेन हि मया कर्तृत्व मालिङ्गितं,
भोक्ताऽ प्येष भवान् जडोऽस्मि विषय भ्रान्तो नितान्तं
प्रभो! ॥१६॥

हे गुरू दत्तात्रेया! मेरे जीवन में जो हुआ था, जो हो रहा है तथा जो होगा ये सब कुछ तुम्हारी लीला रूप कला से उत्पन्न तुम्हारी महिमा ही है। अंहकार युक्त मन होने के कारण मैं कर्ता हूँ सोचकर रहता था। लीला विनोद का अनुभव करने वाले भोक्ता भी तुम्हीं हो। हे प्रभू! मैं हमेशा विषय से भ्रमित जड ही तो हूँ ना।

गुरो दत्त! गुरो दत्त !, दत्त दत्त ! गुरो गुरो !
उद्धरोद्धर मां स्वामिन्! पतितं पति पण्डित॥१७॥

गुरू दत्त! गुरू दत्त! दत्त! दत्त! गुरू! गुरू! हे स्वामी! मेरा उद्धार करो। उद्धार करो! हे पंडित पति! मैं पतित हूँ ना!

भीतोऽस्मि मृत्यो रह मन्वहं भो,
दत्त प्रभो ! पाहि भयाद्भयार्तम्।
तप्तोऽस्मि पश्चात् स्मरणाच्च पश्यन्,
तं नारकाग्निं नरकाष्ठदाहम्॥१८॥

हे दत्त प्रभू! मैं सदा मृत्यु को देखकर डर रहा हूँ। इस भय से मेरी रक्षा करो। मृत्यु के उपरांत जीव नरकाग्नि के लिए लकड़ी बनते हैं।उस नरकाग्नि को देखकर भय से अभी मैं जल रहा हूँ। अर्थात् इंधन रूपी इस जीवकाष्ट को बचा कर, तत्पश्चात् इसे इंधन के रूप में उपयोग करना है।अभी इस लोक में मेरी रक्षा करने के पश्चात् ऊपर लोक में दंड को भोगना साध्य हो जाएगा।

त्वमूहसमतीत इत्यखिल वेदराशेर्वचो,
धियो दधति शून्यता सकलसीममात्रान्तरम्।
यत: प्रथमभूतदृग्गगनशून्यमाकाशता,
त्वमस्यखिलभूतकृ त्तदपि भूतसृष्टेः परः॥१९॥

सारे वेद यह घोषित कर रहे हैं कि तुम बुद्धि तर्कों को भी प्राप्त नहीं होते। ये बुद्धियाँ आकाश (खाली मैदान) की सीमाओं तक ही जा रही हैं।(यहाँ आकाश अंतरिक्ष के

अर्थ में नहीं शून्य के अर्थ में है) यह आकाश सृष्टि के आरंभ में निर्मित पहला भूत है। पंचभूतों की रचना करने वाले तुम इन पंचभूतों से भिन्न, इस पंचभूतात्मक सृष्टि के लिए भी उपलब्ध न होकर परे बन कर रहे हो। इसलिए बुद्धि के तर्क से भी परे हो।

गुणत्रयविवेकिनां मतमिदं यथा वै नृणां,
गुणत्रयविभावना तव जग त्तथा भावना।
अतश्चिदिति शक्तिरित्यचलतत्त्व मित्युच्यते,
गुणत्रय मिदं जग त्त्वदुपमान मेते नराः ॥२०॥

त्रिगुणों के बारे में चर्चा करने वालों के मत के अनुसार, जिस प्रकार मानव के सभी भाव त्रिगुणों के रुप में बताया जा रहा है, वैसे ही तुम्हारे भाव स्वरुपी पूरी सृष्टि को तुम्हारी दृष्टि में त्रिगुण स्वरुप कहा जा रहा है। अतः चैतन्य(सत्त्व), जडशक्ति (रजस) तथा जड घन पदार्थ(तमस्) नामक जगत्तत्व ही सत्त्व रजस और तमस नाम से त्रिगुणों के रुप में बताये जा रहे हैं। यहाँ तुमसे तुलना किया गया जो जीव है, वह उपमा के रुप में ही कहा गया। परंतु जीव तुम नहीं हो ना।

ज्ञातात् तृप्ति र्भवे द्याहि, न ज्ञेया दपि सैव चेत्।
असत् प्रथमपक्षात्तु,सत्पक्ष स्सत्फलो वरः ॥२१॥

तुमको जानने से संतुष्टि मिल रही है। यह जानने के बाद प्रयास करना अनावश्यक है। यह पहला पक्ष है। तुमको जानना असंभव है, यह दूसरा पक्ष है। यह दूसरा पक्ष जानने के बाद भी प्रयास करना अनावश्यक है। अत: इन दोनों पक्षों में भी प्रयास नही है। इसलिए दोनों पक्षों में भी संतुष्टि मिल रही है। लेकिन पहला पक्ष असत्य है और दूसरा पक्ष सत्य है। इसलिए पहले पक्ष से कोई भी फल नहीं मिलता। दूसरे सत्य पक्ष से ही फल मिलता है।

दत्तेत्यक्षरयो रनीक्ष्य महिमा वेदै स्समुद्घोषितो,
विद्वांसो य मुदाहरन्ति सततं वेदान्त जिज्ञासवः ।
सोऽयं विश्वसमित्समिद्धदहनो जाज्वल्यमानोऽनिशं,
पायान्नः परमार्थगोचरमहासार स्सुरै श्चार्थितः ॥२२॥

वेदों से घोषित होने वाले, वेदांत जिज्ञासु पण्डितों से हमेशा उदाहरण के रूप में लेने वाले, विश्वरुपी समिधा के प्रकाशित होने वाले नित्याग्नि होकर परमार्थ दिखाई देने वाले महासार बनकर, देवताओं से पूजनीय दत्त नामक दो अक्षरों के न दिखाई देने वाली महिमा हमारी रक्षा करें।

त्वमेव परमा गतिः परमपूरूष! प्रार्थिता,
त्वदर्थमिह जीवितं कलयितुं त्वदीयां गतिम्।
त्वमन्तरधियोऽपि न स्पृशसि वेद्मि सत्तामितं,
कृतिक्रमण ! विद्युदर्थमिव लोहवल्ली गतम्॥२३॥

हे परम पुरुषा! प्रार्थना से प्राप्त परम गति तुम्ही हो। तुम तक पहुचने के लिए ही इस जीवन का निर्माण हुआ। तुम्हें इस अन्तर्बुद्धि से भी नही जाना जा सकता। अतः तुम अनूह्य (कल्पना से परे) हो। जब तुम इस सृष्टि के एक भाग रुपी उपाधि में प्रवेश करोगे तो उसके द्वारा तुम सिर्फ़ हो (अस्तित्व) जैसे समझ रहा हूँ। उदाहरण के लिए लोहे के तार में प्रवेश की गई बिजली उपस्थित है, यही समझ रहा हूँ। इसलिए ज्ञान के द्वारा तुम्हारा अस्तित्व मात्र ही जाना जा सकता है। तुम्हारे बारे में नहीं जाना जा सकता।

साष्टाङ्गं मत्प्रणामो नमदखिल
जगज्जीवजालाय,लीला-
कल्लोलालोलबालायितयतिततये, भीतभूताय नाम्ना।
सत्तामात्रैकबोध्यस्वविषयमहिमद्वारगम्याय तुभ्यं,
दत्तायोन्मत्तचित्तस्थितिहरगुरवे ज्ञानवित्तोत्तमाय॥२४॥

सर्व जीवों से नमन पाने वाले, अपनी लीलाओं से सन्यासियों को भी शोरगुल मचाकर शिशुओं के रुप में बनाकर उनसे खेलनेवाले, अपने नाम का उच्चारण

करने से ही दुष्टभूतों को डराने वाले, तर्कातीत महिमाओं के प्रदर्शन द्वारा सिर्फ़ अनूह्य रुप में अपनी उपस्थिति (अस्तित्व) का बोध करने वाले, मन की उन्माद स्थिति का हरण करने वाले, गुरु के रुप में, ज्ञान बीज से उत्तम बनने वाले, श्री दत्त को मेरा दंडवत प्रणाम है।

त्रियम्बकद्वन्द्व मनम्ब माद्यं
लोकावलम्बं करूणाकदम्बम्।
बिम्बाधरं जन्मदिनेन्दुबिम्बं,
श्रीदत्तमत्रिप्रभवं भजामः ॥२५॥

तीन दुनि छः नेत्र वाले, अयोनिज, आद्य, लोकों के आधार करुणा रुपी मेघ, बिंबाफ़ल की लालिमा जैसे होंठवाले, पूर्ण चंद्रबिंब युक्त पूर्णिमा के दिन जन्म लेने वाले, अत्रि को पैदा हुए श्री दत्त का भजन कर रहे हैं।

स ताड्यमान श्शकटस्य वाहको,
यथा वृषा धावतिवेत्र धारिणः
तथाऽह मिद्धो निज कर्मणा च ते,
सरामि संसारवहः पशुप्रभो! ॥२६॥

जिस तरह गाड़ी को बंधा हुआ बैल बेंत से मार खाकर गाड़ी को खींचकर ले जाता रहता है, उसी प्रकार हे पशुपती! मैं भी अपने कर्मों से मारते हुए इस संसार रूपी अपने परिवार (कुटुम्ब) को खीचते हुए निरंतर दौड़ रहा हूँ।

दत्तात्रेय महं भजे त्रिवदनं षड्बाहु मावत्सलं
येनैवद्विगुणी कृतो मुखभुजैः स्कन्दो हि शिष्यः कृतः ।
यः कर्ता भुवनावळीघटतते र्भर्ता च हर्ता स्वयं,
यं ध्यायन्ति निरन्तरं शृतिविद श्शृण्वन्ति गायन्ति च
॥२७॥

परिपूर्ण वात्सल्य के साथ जो दत्त गुरू अपने त्रिमुख तथा षड्भुज के दुगुनी मुखों और भुजाओं के साथ अपने शिष्य सुब्रह्मण्यम का आकार निर्माण करके दिखानेवाले, (सुब्रह्मण्य को छः मुख और बाराह हाथ होते हैं), अपने शिष्य को अपने से दुगुने रूप में महान बनाने वाले, सकल भुवन रुपी घटों के कर्ता (घट निर्माता), भर्ता (घटों का भार वहन करनेवाला) और हर्ता (घटों को फोड़ने वाला) के रूप में वेदज्ञानि पूजा करके जिसकी प्रशंसा करते है, उस दत्तात्रेय का भजन कर रहा हूँ।

सपाश काले कलितेऽपि वार्द्धके,
न हन्यते पुत्र सती धनेषणा ।
अनन्त जन्मार्जित संस्कृते रयं
महा प्रभावः कथमस्य रक्षणम्? ॥२८॥

इस बुढापे में, हाथ में पाश धारण के साथ यम का दर्शन होने से भी, मेरा दारेषण (पत्नीमोह), पुत्रेषण (पुत्रमोह) तथा धनेषण (धनमोह) मुझे छोड नहीं रहे हैं। इसका

कारण मेरे अनेक जन्मों के संस्कारों का महा प्रभाव है। अतः मेरी रक्षा कैसी होगी?

कोटिकोटिभवपापनाशको,
मोहसागर तितीर्षुवाहकः ।
लोकजन्मगतिनाशदायको,
दत्त ऐव मम रक्षणक्षमः ॥२९॥

कोटि कोटि जन्मों के पापों को नाश करने वाले, मोह सागर को पार कराने वाले, इस जगत् के सृष्टि,स्थिति और लय करने वाले दत्तप्रभु ही मेरी रक्षा करने में समर्थ हैं।

असूयानिर्मुक्त स्त्रिगुणमदद्दग्वर्जितमना,
य मादत्ते वृद्ध स्तनयमिव रक्षासमयतः।
तदेवायं दत्तःकथित इह तत्वार्थविषये ,
सदत्तो बाह्यार्था दभव दनसूयात्रितनयः ॥३०॥

जिसे असूया (ईर्ष्या) नहीं है वह अनसूया है। जिसे त्रिगुणों का अहंकार नहीं है वही अत्रि है। ऐसी असूया और अहंकार रहित व्यक्ती के अन्तकाल में, रक्षण हेतु भगवान स्वयं आते हैं। दत्त शब्द का तत्वार्थ यही भगवान है। दत्त का इस तरह से आकर रक्षण करना ठीक उस पुत्र की तरह है जो वृद्ध माता-पिता से अंतकाल में पुकारे जाने पर उन के रक्षण के लिए दौड़े-दौड़े आता

है। इसके अलावा दत्त शब्द का बाहरी अर्थ होता है अत्रि और अनसूया का पुत्र।

काषायवस्त्रं स्ववशीकृतास्त्रं,
राजीवनेत्रं रमणीयगात्रम्
वेदान्तवेत्रं करभैक्ष्यपात्रं,
सद्बोधमात्रं भज दत्तचित्रम्॥३१॥

जो केसरी रंग वस्त्रधारी, सर्व अस्त्रों को अपने वश में रखने वाले, पद्म नेत्रवाले, रमणीय शरीर युक्त, वेदांत ज्ञानरूपी बेंत को धारण करने वाले, हाथ में भिक्षा पात्र पकड़ने वाले, सिर्फ अपने अस्तित्व का निरूपण करने वाले उस दत्त रुपी चित्र तत्व की पूजा करो।

कम्बुकण्ठ! नमस्तेऽस्तु , दत्त! बिम्बाधरद्युते !
जगदालम्ब ! रोलम्ब!, मायाम्बाहृदयाम्बुजे ॥३२॥

शंख रुपी गर्दन वाले! बिंबाफ़ल की लालिमा जैसे होंठ वाले! जगत के आधार! माया माता के हृदयकमल के भ्रमर! हे दत्त! तुझे मेरा प्रणाम।

आनसूयक मस्माकं, नायकं मुक्तिदायकम्।
वेदान्तगायकं दत्तं, साष्टाङ्गं प्रणमामि तम्॥३३॥

अनसूया पुत्र, हमारे नायक ,मुक्ति प्रदाता तथा वेदांत गायक के रुप में रहने वाले उस दत्त को दंडवत् प्रणाम कर रहा हूँ।

पद्मासनाय करपद्मगतागमाय
नारायणाय नळिनीदळलोचनाय
सर्वेश्वराय पुरगर्वहराय तुभ्यं,
नारङ्गवर्णवसनाय नमो नमस्ते॥३४॥

पद्मरुपी करों में वेदों को धारण करने वाले पद्मासनस्थ नारायण को, नलिनी दल नेत्र वाले, त्रिपुरगर्व का हरण करने वाले सर्वेश्वर को, नारंगी रंग का वस्त्र धारण करने वाले उस भगवान रूपी तुम्हे प्रणाम कर रहा हूँ।

रणं मरण मासन्नं, मा मालोकय लोकप!
पार्थं व्यर्थ पदाक्षेप – पूर्वपक्षं पुरा यथा ॥३५॥

हे लोकेश्वर! मृत्युरण के नजदीक पहूँचे हुए मुझे, पहले व्यर्थ शब्दों से आक्षेपण करते हुए पूर्व पक्ष करने वाले पार्थ को देखकर कुरुक्षेत्र में जैसे आपने अनुग्रहित किया वैसे ही मुझे भी अनुग्रहित करें।

भज भज प्रियदत्त मन्तीन्द्रियं,
न वचसा मनसा च धियागतम्।
श्रितकृते नर रूप मुपाश्रितं,
गुरूवरं वरदाभयदायकम्॥३६॥

इंद्रिय ज्ञान के अतीत, वाक, मन और बुद्धि से परे रहने वाले, आश्रितों के लिए नराकार का आश्रय लेने वाले, वरदाभय दायक तथा गुरुवर प्रियदत्त का भजन करो। भजन करो।

हे दत्त!हृत्तिमिरभित्तिविभेदबोध!,
हे दत्त! मत्तजनचित्तमलापहारिन्!।
हे दत्त! वित्तसुतदारनिवृत्तगम्य!,
हे दत्त! कृत्तिवसन! त्वयि को नु वेत्ति ?॥३७॥

हृदयतिमिर रूपी दीवार को अपने बोध से छेदने वाले हे दत्त, मदमस्त लोगों के चित्त मल का हरण करने वाले हे दत्त, ईषणा त्रय (पत्नी,पुत्र तथा धनमोह) का निवारण करने वाले को प्राप्त होनेवाले हे दत्त! कृत्तिवासा! दत्त! तुम्हारे बारे में जानने वाला व्यक्ति कोई है क्या?

त्वं प्रपूज्यो गुरूर्ब्रह्मा,
माता विष्णुः पिता शिवः ।
मध्वो रामानुज स्त्वं च,
शङ्करो बोधकत्रयम्॥३८॥

तुम परम पूज्य गुरु रुप में रहने वाले ब्रह्म हो, तुम मातृरुप विष्णु हो, तुम पितृ रुप शिव हो तथा मध्व-रामानुज-शंकर रुपी आचार्यत्रय भी तुम्ही हो।(अर्थात् मध्व गुरु ब्रह्म हैं, रामानुज गुरु विष्णु हैं और शंकर गुरु शंकर हैं)

ईषणात्रय मप्येतत्,
त्वया सृष्ट मिहार्गळम्।
अत्येति य स्स ते याति
त्र्यम्बकाना मनुग्रहम्॥३९॥

तुमसे सृष्टि की गई इस ईषणात्रय (पत्नी, पुत्र तथा धन मोह) रुपी अवरोध को जो पार करता है वह तुम्हारे तीनों नेत्रों की दया के पात्र बनेगा।

किं शैलमन्दिर! विलङ्घ्य गुणत्रयाद्रिं?,
किं वार्धितल्प! भवसागरतारणेन?।
किं पद्मपीठ! षडतीत्य च पद्मचक्रं,
साक्षात् त्वायीह कलिते गुरुरूप मेत्य॥४०॥

हे शैलवास! त्रिगुणरूपी पर्वत शैल को पार करने से क्या फ़ल मिलेगा? हे सागर शयन! संसार सागर को पार करने से क्या प्रयोजन है? हे पद्मपीठ! षडचक्र पद्मों को पार करने से फ़ायदा क्या है? त्रिगुण रुप सहित इस लोक में ही भक्तों के बंधनों के साथ गुरु के रुप में तुम यहीं उपलब्ध हो रहे हो ना। (अर्थात् अनूह्य परब्रह्म की पूजा करना असंभव है। सगुण रूप उपाधि सहित परब्रह्म की पूजा ही संभव है।)

ज्ञानं वेह विभूति र्वा, यत्किञ्चि द्दर्शितं मया।
सर्वं दत्तगुरो रेव,चापल्यं तु ममध्रुवम्॥४१॥

यहाँ मेरे द्वारा जो भी ज्ञान का या महिमाओं का प्रदर्शन हो रहा है वह सब दत्त गुरु का ही है। अगर कोई किसी भी तरह की चंचलता दिखाई दी तो वह निस्संदेह ही मेरी है।

शुष्क पत्र ध्वनि र्दोषो, व्यजन स्यैव मर्मरः।
गुणस्तु धारकस्यैव, चलनं पवनप्रदम्॥४२॥

ताड़पत्र से बनाये गये पंखों से हवा देते समय जो सूखे पत्तों की ध्वनि निकलती है वह पंखे का दोष है। उस पंखे की हवा का चलन-गुण पंखा चलाने वाले की शक्ति का गुण है। अर्थात् इस का भाव यह है कि गुण भगवान का है, दोष जीव का है।

शंखचक्रडमरुत्रिशूलक-स्रक्कमण्डलुधरं कराम्बुजैः ।
ब्रह्मविष्णुशिववक्त्रवारिजं, दत्तदैवत मुपास्महे वयम्॥४३॥

शंख, चक्र, डमरु, त्रिशूल, माला तथा कमंडल को पाणिपद्मों में धारण करने वाले, ब्रह्म विष्णु तथा शिवमुख पद्म रुपी दत्त देव की हम उपासना कर रहे हैं।

वामाङ्कदेव्यनघया समुपेत मङ्गे,
यज्ञोपवीत कलितं च कषायवस्त्रम्।
यस्याश्रमः क इति बोद्धु मशक्य मेकं,
दत्तं भजे प्रणववाचक मप्यनूह्यम्॥४४॥

वामाङ्क पर अनघा देवी युक्त रहने वाले, जनेऊ धारी, केसरी रंग के वस्त्र धारी, जिस आश्रम में रहते हैं- उसकी कोई जानकारी हमें नहीं देनेवाले, ॐकार से सूचित होते हुए भी जो हमारे तर्क से परे हैं, उस दत्त का भजन कर रहा हूँ।

काषायवासाः कमनीयकायः,
कादम्बिनीकालजटाकपर्दः।
कुण्ड्यक्षमालाकलितः कराभ्यां,
दत्तोऽय मायाति यमस्तु याति॥४५॥

केसरीरंग के वस्त्रधारि, कमनीय शरीर वाले, मेघ जैसे प्रकाशित हो रहे जटाजूट युक्त हाथ में कमंडल तथा रुद्राक्षमाला के साथ दत्त जब मेरी ओर बढ रहे हैं तब यमराज पीछे मुडकर जा रहा है।

रे मूढ! यासि यदि तन्निरयं रयेण,
मृत्योः परं कथमयं स्मरणं समेति।
ब्रह्मेश्वराच्युतमुखत्रयपद्मसक्त-
कालालकभ्रमरविभ्रमदत्त देवः?॥४६॥

हे मूर्ख! तुम्हारी मृत्यु के बाद तुम्हारे नरक में जाने की व्यवस्था सच में है तो त्रिमूर्ति मुख पद्मों में भ्रमर जैसे खेलते घुंघुराले बाल वाले ये दत्त देव तुम्हारी स्मृति में कैसे आयेंगे?

दत्तं भज त्रिमुखवृत्ताम्बुजभ्रमणमत्ताळिकुन्तलधरं,
चित्तभ्रमक्षपणकृत्तापहारिपदसत्तार्थबोधकगुरुम्
वित्तादिबन्ध विषयात्तव्यथाजनविपत्तारणाङ्घ्रियुगळं,
छेत्तार मुक्त मिह वेत्तार मेक मपि हृत्तामसच्छिद
मजम्॥४७॥

तीन वृत्ताकार मुखों पर घूमने वाले भ्रमर जैसे बाल सहित, चित्त भ्रांति को दूर करके ताप हरण करने वाले, वाक्यों से परम सत्य बोध कराने वाले गुरु, धन आदि बंधनों से होने वाले दुःखों के कारण मुश्किलों में फ़सने वाले भक्तों का उद्धार कराने पादद्वय वाले यहाँ "दत्तं छिन्नं" नामक लोकोक्ति (अर्थात् दत्त स्मरण से समस्त बंधनों का छेद होता है) के अनुसार कहलाने वाले, एकैक सत्य ज्ञानी, हृदयांधकार को भगाने वाले तथा जन्म रहित दत्त का भजन करो।

त्वां जानामि न किञ्चिदप्यवगते र्बुद्धे रतीतोऽसि नो,
ज्ञेयोऽसीति किलावशिष्ट मिह ते ज्ञानं त्विदं केवलम्।
अज्ञेयोऽपि भवानसीति विदितं ह्यज्ञेयलीलादृशा,
ब्रह्मज्ञान मिदं समस्त ममृतं वेदार्णवादुद्धृतम्॥४८॥

तर्क करने की शक्ति युक्त बुद्धि के परे होने के कारण तुम्हारे बारे में थोडी सी भी जानकारी नहीं है। अतः इस प्रकार ज्ञात हुआ कि तुम किसी प्रकार से भी जाने नहीं जा सकते हो। तर्क से परे दिखाई देने वाली तुम्हारी लीलाओं के द्वारा तुम तर्क के परे होने पर भी तुम्हारे अस्तित्व की जानकारी प्राप्त हो रही है। इसलिए तुम बुद्धि से परे होने पर भी तुम नहीं हो ऐसा कहना अनुचित है। यहीं वेदसागर से उद्धार होकर निकलने वाली समस्त ब्रह्मज्ञानामृत है।

दर्शनस्पर्शसंवाद- सहवासचतुष्टयम्।
भाग्यं दातुं तदार्तेभ्यो, नररूपेण दृश्यसे॥४९॥

तर्क से परे रुप में स्थित तुम्हारा दर्शन करके, तुम्हे स्पर्श करके, तुम से बातचीत करके, तथा साथ में मिलकर जीने के भाग्य चतुष्टय (चारों भाग्य) के लिए अति उत्सुक भक्तों को तुम नराकार धारण करके दर्शन दे रहे हो।

अत्रेः पुत्रो नन्दयं श्चानसूयां,
ब्रह्मर्षिणां बोधको ब्राह्मणो यः ।
दत्तात्रेयो नाम नारायणोऽयं,
साक्षात्ब्रह्मा शङ्कर स्स त्रिमूर्तिः ॥५०॥

अत्रि पुत्र, अनसूय नंदन, ब्रह्मर्षियों के शिक्षक, ब्राह्मण रुपी दत्तात्रेय नाम से त्रिमूर्तियों के रुप में नारायण, ब्रह्मा तथा शंकर साक्षात् स्वयं दत्त ही बने हैं।

कर्मत्रय वशादेकः,त्रिमूर्तिर्दृश्यते यथा।
नानामर्त्यावतार स्त्वं,नानाकर्मवशा त्तथा॥५१॥

सृष्टि स्थिति लय नामक तीन कर्मों के कारण जिस प्रकार तीन मूर्तियों के रूप में दर्शन दे रहे हो, वैसे ही अनेक कर्मों को करने केलिए विभिन्न नराकारों में दर्शन दे रहे हो।

ऐकदैव त्रिलोकेषु , त्रिमूर्ति र्भविता भवान्।
भिन्नमर्त्यावतारोऽपि, भिन्नदेशेषु चैकदा॥५२॥

एक ही समय में तीनों लोकों में तुम तीन मूर्तियों के रुप में स्थित हो, ऐसे ही एक ही समय में इस लोक के अनेक देशों में विभिन्न नराकारों में उपस्थित हो।

मायासतीजीवसुतावनाय,
भवा नभू दत्रिज! भक्तिदासः ।
यथा सतीपुत्रसुखाय नित्यं,
धनेषणादासमना स्तथाऽहम्॥५३॥

हे अत्रिनंदना ! माया रुपी पत्नी, जीव रुपी पुत्रों की रक्षा के लिए तुम भक्ति के दास बन गये हो। वैसे ही मैं अपनी पत्नी और पुत्रों की रक्षा और सुख केलिए धनेषण के दास बन गया हूँ।

कमलनयन मम्भोजातपीठे निषण्णं,
नळिनशरविदाहं तत्व मेकं त्रिरूपम्।
त्रिगुणलसदुपाधिब्रह्मसूत्रावलम्ब्यं,
परमपुरूष दत्तात्रेय मत्राश्रयामः ॥५४॥

कमल नयन, कमलासन, कमल शर (मन्मथ) को भस्म करने वाला तीनों रुपों में एक ही तत्व , त्रिगुण प्रकृति की उपाधि में जब प्रवेश करता है, तब तीन धागों का जनेऊ पकडकर जिसका ध्यान करना है, उस परम पुरुष श्रीदत्तत्रेय के यहाँ आश्रय ले रहा हूँ।

बालातपांशुरुचिचेलाभिराम मळिनीलालकभ्रममुखं,
कालान्तकं स्वपदलोलाश्रितार्तिहर
मालोक्यविश्वविभवम्।
फालाक्षिबिम्बरुचि जालानलक्षपितलीलारविन्दविशिखं,
हालाहलांकगळ मालीनभक्तिगणमालान्तरं भज
गुरुम्॥५५॥

सूर्योदय के समय के सूर्य कांति जैसे केसरीरंग वस्त्र पहनने वाला, काले भ्रमर जैसे घुंघुराले बाल वाले कालांतक, अपने चरणों के आश्रय लेने वाले के कष्ट मिटाने वाला, दिखाई देने वाले इस जगत् को ही संपदा के रुप में रखनेवाला, ललाट नेत्र के प्रकाश से जनित अग्नी से पद्माशर रुपी मन्मथ का दहन करने वाला, हलाहल विष को कंठ में दाग के रुप में रखने वाला तथा भक्ति में डूबे भक्त गणों की श्रेणी में रहने वाले उस दत्त गुरु का भजन कर रहा हूँ।

स्मारामि दत्तं त्रिमुखाब्ज सुन्दरं,
त्रिमूर्ति चिह्नद्वयशोभि षट्करम्।
निषण्ण मौदुम्बर पादपान्तरं,
स्पुरत्त्विषा तीर्णमिवांशु मालिनम्।५६॥

जो तीन मुखकमलों से सुंदर, त्रिमूर्ति के चिह्न द्वन्द्व से प्रकाशित छः हाथों से युक्त, धग धग चमकनेवाले तेजस से प्रकाशित होते हुए, औदुंबर वृक्ष के नीचे बैठ कर, उस

वृक्ष की शेखाओं के बीच दिखने वाले सूर्य नीचे उतर कर बैठा है जैसा लगने वाले दत्त का स्मरण कर रहा हूँ।

काषायवर्णवसनं कमनीयकायं,
कादम्बिनीरुचिरकालजटा कपर्दम्।
औदुम्बरद्रुमधरातलवेदिकायां,
ध्यानस्थितं भज परात्परदत्तदेवम्॥५७॥

केसरी रंग के वस्त्रधारक, सुंदर शरीर वाले, मेघ जैसे काले रंग से प्रकाशित जटा ज़ूटवाले, औदुंबर (उदंबर) पेड के नीचे स्थित चबूतर पर ध्यान में बैठे परात्पर दत्त देव का भजन करो।

काषायांशुस्पुरणवसनं कञ्जकिञ्जल्कवर्णं,
ज्ञानज्योतिः प्रतिमवपुषा नित्यजाज्वल्यमानम्।
भिक्षापात्रं करकमलयो र्ब्रिभ्रतं ब्रह्मदण्डं,
दत्तात्रेयं भज भज विधिं विष्णु मीशं त्रिमूर्तिम्॥५८॥

जो केसरी रंग के किरण से प्रकाशित वस्त्र को पहनता है,जो पद्म केसर रंग वाले है,जो ज्ञानज्योती के ही मूर्ति के रुप में परिवर्तित शरीर से युक्त है,जो हमेशा प्रज्वलित तेजस्वी है, जो कर कमलों में भिक्षा पात्र तथा ब्रह्म दंड धारण करता है, जो ब्रह्म, विष्णु और शिव के त्रिमूर्ति के रुप में रहता है उस दत्त का भजन करो। भजन करो।

कालाग्निकीलेष्वपि पच्यमानो,
न मुञ्चति स्म स्वगुणं जनोऽयम्।
तथाऽपि यत्नः क्रियते हि नित्यं,
दत्त! त्वया सद्गुरु दण्डपाणे! ॥५९॥

नरक में अग्निज्वालाओं से जलाने से भी ये लोग अपने गुणों को नहीं छोड रहे हैं। फ़िर भी गुरु स्थान में बेंत को धारण किया हुआ हे दत्त! सदा तुम उन्हें हर जन्म के बाद नरक में दण्ड देकर अपने प्रयत्न रुपी प्रयास कर ही रहे हो ना।

ज्ञानाग्निना बोधयसि स्म पूर्वं,
कालाग्निना त्वं दहसि स्म पश्चात्।
न त्वं गुरु र्बाधकबोधकोऽसि,
दत्तो भवा न्बोधकबाधको हि ॥६०॥

तुम पहले ज्ञानाग्नि से समझाओगे। बाद में अगर परिवर्तन नहीं होगा तो कालाग्नि से जलाकर सताओगे। तुम बोधन के द्वारा सतानेवाले गुरु नहीं हो । पहले तुम समझाकर बाद में परिवर्तन नहीं होता तो दंड देकर सतानेवाले गुरु बन रहे हो।

यं भिक्षुकब्राह्मणवेषिदत्तं,
निध्याय धावन्ति समेऽपि दूरम्।
न जानतेऽमी तमुदीरितैक -
जृम्भासमाविष्कृतमेरुशैलम् ॥६१॥

भिख मंगा ब्राह्मण के रूप में रहने वाले इस दत्त को देखकर दान देने के भय से सब लोग दूर भाग जा रहे हैं। परंतु ये केवल एक जंभाई से सोने के पहाड मेरु पर्वत की सृष्टि करने का विषय लोग जान नहीं रहे हैं।

काषायांशुक! कामिनीभुजसमालम्बो ऽसि कामातुरो,
वेदान्तामृतवर्षवारिद! सुरामत्तोऽसि विस्रस्तवाक्।
सत्त्वं भाति रज स्तमश्च भवति त्रैगुण्यवर्णत्रयं,
बोधायाथ परीक्षितुं श्रितजनं दत्त! द्विधा दृश्यसे ॥६२॥

हे केसरी वस्त्रधारी! तुम कामातुर होकर कामिनी के कंधे पर गिर पडे हो। वेदांत रुपी अमृत को बरसाते हुए, शराब पीकर पागल जैसे बात कर रहे हो। इस तरह सत्त्व रजस तमो गुणों के साथ प्रकाशित हो रहे हो। इस प्रकार त्रिगुणों को पहले ज्ञान के रूप में बोध (सत्त्व) करा कर और बाद में आश्रितों की परीक्षा लेने केलिए (रजस् और तमस्) त्रिगुणों का प्रयोग कर रहे हो। हे दत्त! तुम आचार्य (विष्णु-सत्त्व) के रुप में तथा परीक्षक (ब्रह्म - रजस् और शिव- तमस्) के रूप में भी दोनों तरह दिखाई दे रहे हो।

घनमोहतमोनिरासबोधं,
स्फुटकाषायपटं तनौ दधानम्।
प्रणमाम्युदयारुणांशुमन्तं,
गुरुदत्तं धिषणाब्जसुप्तिबोधम्॥६३॥

घन (महान या मेघोंका) मोहांधकार को मिटाने ज्ञानबोध रुपी प्रकाश युक्त रहने वाले, प्रस्फुटित केसरी रंग वस्त्र को शरीर पर धारण करके उषोदय के संध्याकांति से युक्त रहने वाले, बुद्धि रुपी पद्मों के नींद को हटाने केलिए ज्ञान बोध करने वाले गुरु दत्त को प्रणाम करता हूँ।

सन्ध्याभास्वरवाससे गळलसद्बीजाक्षमालावते
जाटाजूटमनोहाराय कनकच्छायाङ्गवर्णाय च।
भिक्षाभस्त्रिकया भुजे श्रुतिवचस्सारामृताऽऽवर्षिणे,
दत्तात्रेय यतीश्वराय नतय स्साष्टाङ्गदण्डा मुहुः ॥६४॥

संध्या जैसे प्रकाशित लालवस्त्र पहनने वाले ,कंठ को सुशोभित करने रुद्राक्ष माला पहनने वाले, जटाजूट से मनोहर, सुनहरे रंग के छायावाले, कंधे पर जोला लटकानेवाले, वेद वाक्यों के सार रुपी अमृत को बरसाने वाले दत्तात्रेय यतीश्वर को बार बार दंडवत प्रणाम करता हूँ।

तमेकदा दत्तमहानुभावं,
स्नानाय काशीमणिकर्णिकायाम्।
समेत मद्राक्ष महं सकम्पो,
ब्राह्मे मुहुर्ते ह्यनुकम्पायाऽस्य॥६५॥

एक बार ब्राह्मी मुहूर्त के समय में काशी नगर के मणिकर्णिका घाट (के बगल में पंचगंगा घाट) पर स्नान केलिए आये हुए उस दत्तमहानुभाव को जब मेरा शरीर कांप रहा था तब मैंने उनकी कृपा से देख पाया।(वहाँ के यतीश्वर ने दत्त स्वामी से कहा कि श्री दत्तात्रेय मणिकर्णिका घाट पर स्नान करेंगे। लेकिन मणिकर्णिका घाट के बगल में स्थित पंचगंगा घाट पर स्नान करते हुए श्रीदत्तात्रेय ने दत्तस्वामी को दर्शन दिया। यह घटना मुझे श्रीदत्तस्वामी द्वारा बताया गया। श्लोक में मणिकर्णिका घाट के पास बोलने का अर्थ है उस के बगल में स्थित पंचगंगा घाट का अर्थ भी निकलेगा। जैसे नव दंपतियों को वशिष्ट द्वारा अरुंधति नक्षत्र को दिखाने की प्रथा है, वैसे ही ये घटना भी है। यतीश्वर की बातों का भंग न होने की दृष्टि से श्लोक मे मणिकर्णिका घाट कहा गया)।

अतीन्द्रियानुभावाय, सान्द्ज्ञानार्णवाय च।
दत्तात्रेययतीन्द्राय, नमश्चन्द्रानुजाय ते॥६६॥

जो इंद्रियातीत प्रकाश से युक्त, घनीभूत ज्ञान सागर तथा चन्द्र सहोदर है उस दत्तात्रेय यतीन्द्र को प्रणाम करता हूँ।

भवा नस्तीति नास्तीति, पक्षयो राद्यसम्मतिः ।
अन्धाग्रवह्निव च्चैव, स्मर्यतां संशयात्मभिः ॥६७॥

तुम हो या नहीं। इन दो पक्षों से संशय रखने वाले भी तुम हो बताने वाले पहले पक्ष को ही ग्रहण करना चाहिए। अगर अंधा के सामने अग्नि है या नहीं इन दो पक्षों से अनुमान लगाते तो आग है समझकर पीछे हटना ही उत्तम कार्य मान कर पहचानना चाहिए।

अनेकानूह्य लीलाभिः, जीवितानुभवे नृणां।
अस्तीति स्थाप्यते पक्षः, पित्रा पुत्रावनार्थिना ॥६८॥

पिता रुपी दत्त, पुत्र रुपी जीवों की रक्षा करने केलिए अपने जीवनानुभवों में अनेक अनूह्य लीलाओं द्वारा अनूह्य रुप में मै हूँ बोलने वाले पक्ष की ही स्थापना कर रहे हैं।

भेत्तारं ह्यदयग्रन्थे, र्वेत्तारं श्रुतिसद्गिराम्।
छेत्तारं वित्तबन्धादे ,रत्तारं जगतां स्तुमः ॥६९॥

जो हृदय गांठ को भेदने वाले, वेदवाक्यों के सार को जानने वाले विद्वान, धनेषणा (धन के मोह) आदि बंधनों

के सुलझाने वाले, प्रलय काल में जगत् का भक्षण करने वाले उस दत्त की स्तुति कर रहे हैं।

सत्तामात्रमतं दत्तं, चित्तोन्मत्त मिवेक्षितम्।
वन्दे हृत्तापहृत्तत्त्वं, मत्तेभगति मुत्तमम् ॥७०॥

जो उपस्थिति या अस्तित्व ज्ञान मात्र को देने वाले, पागल जैसे दिखने वाले, मत्तेभ जैसे चलने वाले, हृदय ताप का हरण करने की शक्ति से युक्त उस दत्त को प्रणाम करता हूँ।

हे पद्मासन! हंसवाहन! नमो वेदार्णवोत्पादक!
हे नारायण ! नीरजेक्षण ! नमो नागेन्द्रशय्याशय !
हे गङ्गाधर! चन्द्रशेखर! नमो नन्दीश्वरारोहण !
हे मूर्तित्रयवेषदत्त ! सततं त्वन्नामलोलं कुरु ॥७१॥

हे पद्मासना ! हंस वाहना! वेदसागरों की सृष्टि करने वाला! तुझे प्रणाम । हे नारायणा! पद्मलोचना! नागेन्द्र शयना !तुम्हें प्रणाम। हे गंगाधरा! चंद्रशेखरा! नंदीश्वर पर आरोहण करने वाला !तुझे प्रणाम। हे त्रिमूर्ति वेषा! दत्ता ! हमेशा मुझे तुम्हारे नाम जप करने में आसक्त बना दो।

कालो धावति वाहिनीव सततं कामीव वामातुरः,
काला मे दयितालका विकलिताः फेनद्युतिं बिभ्रति।
कालस्याकलि काल किङ्कर कुलं दत्तं त मायामि यः,
कालातीतमहामहेश्वर परब्रह्मासने राजते ॥७२॥

सुंदर स्त्री के पीछे जिस तरह कामुक पड़ता है उसी तरह यह काल एक नदी की तरह निरंतर दौड रहा है। उस नदी के झाग की सफ़ेद कांति मेरी पत्नी के बिखरे काले घुंघराले बालों में दिखाई दे रहा है। यमराज के काले सेवक (किंकर) दिखाई दे रहे हैं। इस समय जो व्यक्ति काल के अतीत तथा महा महेश्वर परब्रह्म के सिंहासन पर बैठे हैं, उस दत्त के शरण पा रहा हूँ।

मार्जालो रदनक्षताङ्कित मसौ मुञ्च न्मुहु र्मूषिकं,
गृह्णन् क्रीडति कञ्चिदेव समयं तं भक्षयत्यन्तिमे।
रोगग्राह विमोक्षणैः पशुगणै रेवं स दत्तप्रभो !
कालः खेलति कालकूटकबळं त्वां कालकण्ठं विना
॥७३॥

बिल्ली अपने दांतों से काट कर छोडने वाली चूहे को बार बार पकड कर तथा बार बार छोडते हुए कुछ समय तक खेलकर अंत में उसे खा लेता है। ऐसे ही रोग ग्रहण तथा रोग विमोक्ष दोनों बार बार होते हुए जीव रुपी पशु गण से काल भी कुछ समय तक उसके साथ खेल कर अंत में

खा लेता है। परन्तु कालकूट विष को गलने वाले काल कंठ रुपी हे दत्त प्रभू! काल सिर्फ तुम्हारे पास नहीं आता।

जृम्भतां त्रिमुख! जृम्भतां मह,
स्तावकं बहुखगोळकन्दुकैः ।
यच्च खेलति जनिभ्रमक्षयै,
रन्तरिक्षतलखेलनाङ्गणे॥७४॥

हे त्रिमुख! तुम्हारा तेजस् विजृंबित हो जाए, विजृंबित हो जाए । वह जनन, भ्रमण तथा प्रळय से युक्त अनेक खगोळ रुपी गेंदों से आकाश नाम के क्रीडा मैदान में खेल रहा है।

स्नानाय सौख्यरतिचित्तवशं प्रविष्टं,
संसारसागरमहोर्मिसमागतं माम्।
उड्डीनमत्स्यमकरास्यमहोग्रधारा –
दंष्ट्राविखण्डित मिमं कलयेह दत्त! ॥७५॥

संसार सागर के स्नान सुख को चाहने वाले मन के वशीभूत होकर तथा प्रवेश करके उस के बडे बडे तरंगों के चपेट से मैं ऊपर उठने वाली मछलियाँ और मगरमछ के क्रूर तथा तेज दातों से खंडित हो चुका हूँ। हे दत्ता ! उस स्थिति से युक्त मुझे देखो।

आत्रेयदत्त! भवतो जगदाविरासी,
न्मायेन्द्रजालमिव मायिनरा द्विचित्रम्।
मायाविकारनरजाति कणोऽह मस्मि,
ब्रह्माह मित्यपलपं स्तव हासहेतुः ॥७६॥

हे दत्तात्रेय! जैसे जादूगर से माया की जादूगरी उद्भव होती है वैसे ही यह जगत तुम से आविर्भाव होता है। इस जादूगरी का भाग है नरजाति, मैं उस नर जाती का एक कण ही हूँ("अहं ब्रह्म")। "मैं भगवान हूँ" कहकर प्रेलाप करते हुए तुम्हारे मंदहास का कारण बन रहा हूँ।

नाटके ते जगत्यस्मिन्, क्रीडा नव रसालये।
अहं ब्रह्मेति जीवानां, वाचो हास्य रसोर्मयः ॥७७॥

तुम ने अपने विनोद केलिए नव रसों से युक्त इस जगन्नाटक की सृष्टि की। इस में मैं भगवान हूँ कहने वाले जीवों के अद्वैत वाक्य ही हास्य रस के तरंग हैं।

ऊह्योपाधिनरद्वारा, नोह्यस्त्वंज्ञान बोधकः
अवतीर्णो नित्यसङ्गात्, चिदात्मेति त्वमुच्यसे ॥७८॥

तर्कातीत रुप में रहने वाले तुम दर्शन योग्य नराकार उपाधि द्वारा अवतार ग्रहण करके ज्ञान बोध कर रहे हो। तुम्हें और नरोपाधि के इस नित्य संबंध के द्वारा नरोपाधी रुपी चिदात्मा से तुम्हें पुकारते हैं। अर्थात् फ़ल

की टोकरी ढोने वाले को 'फ़ल की टोकरी ' बुलाने जैसे ग्रहण करना चाहिए।

त्वां नित्य मनुयात्येव, चिदात्मोपाधि रत्र तु
नानेनोपाधि मन्वेति , भवानत्रैव हि भ्रमः ॥७९॥

तुम जब अवतार ग्रहण करोगे तब यह चिदात्मा रुपी उपाधी तुम से जुडकर रहता है। परंतु तुम उस उपाधी से जुडकर नहीं रहते हो। अतः हर नर रुपी चिदात्मा तुम नहीं हो। इसी से अद्वैत विद्वान भ्रमित होते हैं।

ऊह्यार्थशब्दचैतन्या, दनूह्यं भिद्यते सदा।
अद्वैतांशांशिताद्वैता, न्यवाच्यानि यथार्थतः।।८०॥

बुद्दि से ग्राह्य वस्तु को ही नाम रुपी शब्द होते हैं। अतः चैतन्य शब्द के रुप में कहलाने वाले आत्मा से, तर्क से अतीत परब्रह्म हमेशा अलग होते हैं। इसलिए नरावतार विषय में आत्मा और परब्रह्म के बीच जो सत्य संबंध है, उसे अद्वैत (दोनों वस्तु एक) या विशिष्टाद्वैत(पूर्ण तथा उसका भाग रुपी दो वास्तु है) या द्वैत (दोनों वास्तु अलग अलग है) कहा नहीं जाता। ये तीन मत नरावतार विषय में उपस्थित आत्मा और परमात्माओं के बारे में ही हैं। साधारण जीवात्मा और परमात्मा का विषय नहीं है। नरावतार विषय में भी आत्मा बुद्धि से ग्राह्य है और परमात्मा बुद्धि के अतीत है। ये तीनों मत बुद्दि से ग्राह्य

होने वाले दो वस्तुओं के बारे में ही बता सकते हैं। परंतु जब एक वस्तु बुद्दि के अतीत होता है, तब उस के बारे में बताने से ये तीन मत निष्फ़ल होजाते हैं।

ऊह्यानूह्यतया द्वैतं, पूर्णं तन्न चिदात्मतः।
अहङ्कार क्षया त्त्रीणि मता न्युद्धरणक्रमात्।।८१॥

तर्क से अतीत तथा तर्क से ग्राह्य वस्तु के बीच भेद भी द्वैत ही है। परंतु इस में परिपूर्ण द्वैत है। द्वैतमत में परमात्मा और जीवात्मा के चैतन्य तत्व को स्वीकारने से पूर्ण द्वैत नहीं होता, क्योंकि दोनों में चैतन्य तत्व है। फ़िर भी ये त्रिमत् इस प्रकार कह रहे हैं कि पूर्ण अहंकार से रहने वाले बौद्ध मीमांसकों को बताने के लिए अद्वैत से आकर्षित करना, जब अहंकार थोडा कम होगा तब पूर्ण तथा उसके भाग का संबंध बताकर कुछ द्वैत का प्रतिपादन करना, अहंकार पूरी तरह कम होता है तो केवल चैतन्य मात्र से ही अद्वैत को रखकर अन्य गुणों में पूर्ण द्वैत के बारे में बताना, इन तीनों स्तरों का क्रमानुसार जीवोद्दरण केलिए आचार्य लोगों ने बताया। अर्थात् पूर्ण अहंकार से युक्त बौद्दों केलिए अद्वैत मत कहा गया। उसके बाद जब अहंकार कम हो गया तो विशिष्टाद्वैत कहा गया। उस के बाद जब अहंकार अणु मात्र बच गया तब द्वैत मत कहा गया। जब अहंकार पूर्ण

रूप से निकल गया तब पूर्ण द्वैत (बुद्धि से अतीत परमात्मा और बुद्धि से ग्राह्य चैतन्य रुपी आत्मा पूरी तरह अलग अलग है)-अब इस ग्रन्थ कर्ता दत्त स्वामी द्वारा कहा जा रहा है।अर्थात् चौथा मत(पूर्ण द्वैत) भी आगया।

गङ्गाशीकरमौक्तिकै र्गजशिरोभेदप्लुतै र्वाऽर्चितं,
दत्तं जन्तुकपर्यवेक्षणपरं कैलासशैलाग्रतः।
जाटाजूटविकर्षितारुणजटाजालं महाताण्डवे,
पञ्चास्यं प्रणमामि पञ्चवदनं गर्जाट्टहासं मुहुः ॥८२॥

शिवदत्त शरीर में उपस्थित सफ़ेद गंगाजल के बिंदु ऐसे लग रहे हैं जैसे गजासुर नामक हाथी को शिवदत्त शेर मारने पर उसके कुंभस्थल को भेदने से उस में स्थित मोतियाँ उछलकर गिरने से ऐसा लग रहा है कि वे पूजा कर रहे हैं। कैलास पर्वत शिखराग्र से शिवदत्त इतर अल्प जंतु रुपी जीवों का पर्यवेक्षण करने वाले शेर जैसे दिख रहा है। तांडव नृत्य उद्धृत होने के कारण जटाजूट निकल कर लाल जटा तथा लाल केशों के रुप में फैलने से शिव-दत्त शेर जैसे दिख रहा है। बार बार भयंकर गर्जन के साथ शेर जैसे दिखने वाले पंचवदन शिवदत्त को (यहाँ पंचवदन शब्द को पंच मुख वाला शिव या पंचास्य शब्द से कहलाने वाला शेर, दोनों अर्थ होते हैं) प्रणाम करता हूँ।

कार्तिक्यां बहुलक्षदीपरुचिरा दत्तेशदेवालयाः,
दृश्यन्ते बहवो न कश्चिदपि हा! देहो विमोहामलः।
यस्मिन् ज्ञानमहाप्रदीपपरमज्योति स्सदा दृश्यते,
भक्तिस्नेहमनोदशा मयमिदंयेनोज्ज्वलं वै जगत्॥८३॥

इस कार्तिक पूर्णिमा के दिन लाखों दीपों के प्रकाश के साथ शिवदत्त के कई मंदिर दिखाई दे रहे हैं। परंतु, जगत को प्रकाशित करनेवाले भक्ति रूपी तेल में मन रूपी बत्ती जलने से व्याप्त प्रकाश ज्ञान महादीप परंज्योति हमेशा दिखने वाले मोह रहित तथा विमल नर देह रूपी मंदिर एक भी दिख नहीं रहा है।

मासेऽस्मि न्नहि पुण्यदेशगमनं प्रख्याततीर्थेषु वा,
न स्नानं कृत मालयान्तरगतिः पूजाकृते वा कृता ।
दत्तस्यात्र कपर्दिनः प्रतिदिनं भिक्षासमेतस्य मत् -
वीक्षावर्त्मसु नीललोहितमहो! नित्यं यतो नृत्यति
॥८४॥

इस कार्तिक मास में कोई भी पुण्य क्षेत्र का दर्शन मैं ने नहीं किया। किसी भी विख्यात तीर्थ स्थल में स्नान भी नहीं किया।पूजा के लिए कोई भी मंदिर नहीं गया। जटाजूट धारि शिवदत्त हर दिन भिक्षा मांगने के लिए आते हुए देखता हूँ, तब उन से निकलने वाले नील लोहित तेजस् मेरी दृष्टि रूपी गलियों में हमेशा नृत्य

करता है। यही मेरा इस तरह व्यवहार करने का कारण है।

मीमांसा प्रथमा प्रवक्ति सकलं कर्मैव दैवंत्विति,
ब्राह्मी वक्ति परा तदूहविषयो नैव क्रियाराडिति।
तत्तत्कर्मफलप्रदायकविधि र्निर्दिश्यते स त्वया,
धर्मो धेनुरपि श्रितो भटइव व्यापारकृ द्दत्त! ते॥८५॥

पूर्व मीमांसा यह कहता है कि "सब कुछ कर्म के वश में है, अतः कर्म ही भगवान है"। उत्तर मीमांसा के अनुसार वह भगवान तर्क से परे है, अतः कर्म भगवान के अधीन है। यही सच है। क्यों कि हर परिणाम कर्म के अधीन है। परंतु यह सारी कर्म व्यवस्था तुम्हारी आज्ञा से शासित है। यह कर्म रुपी धर्म देवता भी गाय का रुप धारण करके तुम्हारे सेवक के रुप में काम कर रही है ना।

यं ब्रह्मेति महर्षयो हरिरिति श्रीवैष्णवा यं श्रिताः,
यं साक्षा त्परमेश्वर श्शिव इति ध्यायन्ति शैवा स्सदा।
दत्तात्रेय इति स्मरामि तमहं सृष्टिस्थितिध्वंसदं,
ब्रह्माण्डस्य गुणक्रियात्रिवदनं ब्रह्मेति वेदै र्मतम्॥८६॥

महर्षि लोग जिसे ब्रह्मदेव के रुप में, वैष्णव जिसे हरी के रुप में आश्रय पा रहे हैं, शैव जिसे परमेश्वर के रुप में हमेशा ध्यान करते हैं, उस रुप को मैं दत्तात्रेय के रुप में स्मरण करता हूँ। वही इस जगत के सृष्टि, स्थिति तथा विनाश करते हुए, त्रिगुणों से त्रि कर्मों को सूचित करने

वाले त्रि मुखों से तथा वेदों द्वारा ब्रह्म के रुप में माना जाता है।

बाह्योपाधि स्त्रिमूर्तिश्च, धार्यमाणांशुकत्रयम्।
दत्तात्रेयोऽतंरात्मा हि परब्रह्माख्यधारकः ॥८७॥

त्रिमूर्ति रुपी धारण करने वाले तीन वस्त्र बाह्य उपाधी ही है। अंतरात्मा रुपी दत्तात्रेय उन तीनों वस्त्रों के धारण करने वाला परब्रह्म है।

येन वेगेन कालोऽयं, धावतीह न मे भयम्।
तेन वेगेन मृत्यु र्मां, समेत्येतद्धि मद्भयम्।
क्रीडाकारा हि धावन्तो ,विनोदाय समीक्षिताः।
धावत्काल विनोदस्त्वं,दत्त!मृत्युञ्जय!प्रभो! ॥८८॥

यह दौडने वाले समय के बारे में मुझे कोई डर नही हैं। इस काल की गति के साथ मृत्यु मुझे पहुँच रही है। वही मेरा डर है। दौडने वाले खिलाडियों को देखकर लोग खुश होते हैं। उसी प्रकार हे दत्ता! प्रभू! मृत्युंजय रुपी तुम उस दौडने वाले काल को देखकर खुश हो रहे हो। परन्तु मृत्यु से भयभीत मैं खुश नहीं रह सकता।

पापान्यनूह्यानि कृतानि दत्त!
क्षमामपि प्रार्थयितुं न धैर्यम्।
त्वमेव कारुण्य मकारणं मे ,
भिक्षां प्रदायावसि चे त्कृतार्थः ॥८९॥

हे दत्ता! मैं ने सोच से भी परे पापों को किया। उसे क्षमाकरने केलिए मुझे तुम से माफ़ी मांगने का भी धैर्य नहीं है। तुम्हीं अपने अपार और कारण रहित करुणा से थोडा मुझे भिक्षा के रुप में देकर रक्षा करोगे तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

सङ्कटेषु समेतेषु,दुर्निवार्येषु कैरपि।
दत्तात्रेय ! भवानेव भवानेव गतिर्मम॥९०॥

किसी से भी न मिटनेवाले महा संकट आये तो हे दत्तात्रेय! तुम्ही मेरे शरण हो। तुम्ही मेरे शरण हो।

जगत्सृष्टिस्थितिध्वंस- हेतुं स्वं त्रिमुखै र्वदन्।
त्व मनूह्यपरब्रह्म, व्यक्त मेव मुपाधिना॥९१॥

तुम अपने त्रिमुखों के द्वारा इस जगत के सृष्टि स्थिति तथा लय को मैं ही कर रहा हूँ बोलते हुए इस प्रकार की उपाधि द्वारा तर्कातीत परब्रह्म रुपी तुम प्रकट हो रहे हो।

त्वमेव दाताऽप्यहमेव याचको,
भवामि दत्त! प्रति जन्मनि प्रभो! ।
फलप्रदा काऽपिच याचना भवे,
दितः परं किंनु मनोहरं प्रियम्? ॥९२॥

हे दत्तप्रभू! हर जन्म में तुम दाता के रुप में और मुझे तुम्हारे याचक के रुप में रहना है। मैं जो भी चाहता हूँ, तुम्हारी वजह से वह फ़लित होता है। अतः इस से बढ़कर मनोहर तथा प्रिय और क्या होगा।

दत्त शब्देन तेनैव, ददाति किमपीप्सितम्।
इति सूचयति स्वामी, पिता राजा गुरु र्भवान्॥९३॥

जो भी चाहते है, वह देनेवाला ही दत्त है, उस शब्द से स्वामी, पिता राजा तथा गुरु के रुप में तुम सूचित हो रहे हो।

ब्रह्मानन्दमहोदधिः शृतिविदां पोप्लूयमानार्थिनां,
हंसानां प्रणवामृतह्रदतलप्रोत्थानधाटीमताम्।
ऊहातीतपरात्परस्थितिमहातत्वक्रियाव्यञ्जको ,
दत्तेत्यक्षरयो रयं हि महिमा केनापि नो वर्ण्यते॥९४॥

ॐकारामृत सरोवर से ऊपर उठकर तेजगति से तैरने की इच्छा रखनेवाले वेदविद रुपी परमहंसों को ब्रह्मानंद सागर, तर्कातीत ब्रह्म के स्थान पर करने वाली महाक्रियाएँ जगत सृष्टि, स्थिति तथा लय को सूचित

करने वाले दत्त नामक दो अक्षरों की महिमा को कोई भी वर्णन नहीं कर सकते।

मृत्युदेव! विनति र्नतेः परं, शृयतां च नचिकेतसो गुरो !
य स्त्ववेद्यविदित स्त्वयेरितो, दत्त ऐष विदितो
ह्युपाधिना ॥९५॥

हे मृत्युदेवा! नचिकेत के गुरु! प्रणाम करने के बाद मैं तुम से विनति कर रहा हूँ। 'परमात्मा के बारे में कुछ भी जान नहीं सकते' यह पता चला कहकर तुम से बताया गया(यस्यामतं तस्यमतं--कठोपनिषत्)। परन्तु वह परमात्मा उपाधि के द्वारा प्रकट होकर दत्त के रुप में व्यक्त हो गया है ना ।

श्री दत्तात्रेय ऐको हि, जगत्परमपावनः ।
यस्याग्रेऽ प्यागमाः पूता, अपवित्रश्चरूपिणः ॥९६॥

इस जगत् में सिर्फ़ श्री दत्तात्रेय ही अकेला परमपावन है, क्यों कि उन के सामने परम पावन वेद भी अपवित्र कुत्तोंके रुप में दिखाई दे रहे हैं।

अस्माक मपि कालोऽयं, सामीप्यं समुपागतः।
दत्तात्रेयस्य सायुज्यं, वयं च कवचं श्रिताः।९७॥

हमारे भी काल नजदीक पहुँच रहा है। हम ने भी उस से बचने केलिए श्री दत्तात्रेय सायुज्य नामक कवच का धारण किया ।

आत्रेयं ब्राह्मणं वन्दे, पाणिदर्भकमण्डलुम्।
वृतं परशुरामेण, विष्णुदत्तेन चापरे ॥९८॥

जिसके हाथ में कुश तथा कमंडल है,जो आत्रेयगोत्र के ब्राह्मण है, जिसे पुरोहित के रूप में अपर कर्मो को कराने के लिए परशुराम और विष्णुदत्त ने आमंत्रित किया अर्थात् उस दत्त को प्रणाम करते हैं।

दत्तात्रेय! भवद्दयाझरझषं मामत्तु मेतेबकाः,
कामक्रोधमदादयो बकशमा स्तिष्ठन्ति वेगग्रहाः।
कालो वा बडिशामिषेण विषयानन्देन कर्षत्ययं,
पातुं मां भवदीप्सितं ननु विना किञ्चि न्न शक्नोति हि ।९९॥

हे दत्तात्रेय! मैं तुम्हारे करुणा रस प्रवाह में संचरित होने वाली मछली हूँ। मुझे खाने केलिए यह काम क्रोध मदादि दुर्गुण मुनियों के रुप में शांति का अभिनय करते हुए मछली को देखते ही झट से पकडने वाले बगुला जैसे तैयार है। अगर इन से बच गया तो भी काल विषयानंद को शिकार के रुप में डालकर कांटे से मुझे पकडकर खीचने केलिए तैयार है। अतः इन परिस्थितियों से मुझे तुम्हारें संकल्प के अलावा और कोई भी शक्ति रक्षा नहीं कर सकती।

अस्मद्भाग्यपरम्परापरिणते स्साक्षा त्परब्रह्म यो,
य स्सर्ग स्थिति नाश कारणमुखै र्ब्रह्माण्डकुण्डीततेः।
यश्चैको जगदाश्रयः परिमिताकारोऽप्यनू ह्योऽस्ति यो,
दत्तात्रेय मुपास्महे त मनघा मङ्के वहन्तं
प्रियाम्॥१००॥

हमारी भाग्य परंपरा फलित होने से, जो साक्षात् परब्रह्म हो, जो ब्रह्मांड रुपी घटों के सृष्टि स्थिति तथा लय के कारण बनने वाले तीन मुख वाले, जो अकेले इस समस्त जगत् के आधार होकर भी सीमित आकार वाले होने से तर्क के अतीत हो, प्रिय अनघा देवी के अंक पर रहने वाले उस दत्तात्रेय की उपासना हम कर रहे हैं।

अष्टसिद्धि तनयै स्समन्वितं,स्वीयदेव्यनघया
समाश्रितम्।
दत्त देव मपि सत्कुटुम्बिनं,भावयामि गृहिणं
गृहीह्यहम्॥१०१॥

अष्टसिद्धि रुपी पुत्रों के साथ, अपनी देवी अनघा से आश्रित, सत् परिवार(कुटुंब) के सहित गृहस्थ रुपी दत्तदेव का ध्यान कर रहा हूँ। मैं भी गृहस्थ हूँ ना ।

जगदाकाशपर्यन्तं,मायामय मिदं जगत्।
क्व माया त्वां विना दत्त!,क्व सिद्धिश्च विना जगत्? ।
माया माश्रित्य सिद्धीनां,प्रभव स्त्वत्त ऐव हि।
इत्यर्थस्य गृहस्थस्य,तात्पर्यं तर्कयामि ते॥१०२॥

आकाश सहित यह पूरा जगत् माया ही है। अगर यह जगत् नहीं है तो अष्टसिद्धियाँ भी नहीं हैं। तुम नहीं हो तो माया भी नहीं। सिद्धियाँ माया को तथा माया ने तुम को आधार बनाया। अतः पुत्र माँ पर और माँ तुम पर आश्रित है। यही तुम्हारे गृहस्थाश्रम का तात्पर्य समझ रहा हूँ।

माया त्वत्प्रभवा पुत्री,विनोद रमणी सती।
ब्रह्मण श्चरितं मूढैः ,कैश्चि दाक्षिप्यते खलैः।
वायुयन्त्रं विदा सृष्टं, रमता वायु सेवया।
पिता भर्ता स किं तस्य?, केवलं कर्तृभोक्तृतः ॥१०३॥

एक वैज्ञानिक हवा देनेवाले पंख का निर्माण करके, उस से निकलने वाली हवा की सेवा का अनुभव कर रहा है। इस से वह उस यंत्र का पिता या भर्ता बनता है क्या? वह सिर्फ़ उसकी निर्माता और उसकी सेवा का आनंद लेने वाला ही है। ऐसे ही इस जगत् रुपी माया शक्ति तुम्हारी पुत्री और पत्नी नहीं कहा जाता। यह सिर्फ़ कुछ मूर्ख लोगों द्वारा ब्रह्म पर किया गया आरोप ही है (ब्रह्म ने अपनी पुत्री को पत्नी बनाया है ऐसा कुछ मूर्ख लोग कहते हैं)।

आत्रेयदत्त! मुनिवंशसुधापयोधि-
राकेन्दुबिम्ब!रमणीयरसस्वरूप! ।
कं वा मदीयकमनीयकवित्वकन्या!,
लोकैकनायकविभो!वृणुते त्वदन्यम्॥१०४॥

हे दत्तात्रेया! ऋषि वंश सुधा समुद्र से उद्भव हुए पूर्ण चंद्रा! रमणीय रस स्वरूप! हे लोकौकनायका! विभू! तुम्हें छोडकर मेरी कविता कन्या और दूसरे को क्यों वरण करती है?

विश्वासप्रतिरूपवेदशुनकै र्धेन्वा च धर्मश्रिया,
स्रक्कुण्डीडमरुत्रिशूल ममलै श्श्री शङ्खचक्रं करैः।
साक्षात्ब्रह्महरीश्वरत्रिवदनै र्वेदान्तसद्बोधकं,
त्वामेव प्रणमामि दत्त! सततं सत्सङ्ग
सन्तोषिणम्॥१०५॥

विश्वास रुपी वेद शुनकों के साथ, धर्म देवता रुपी धेनु के साथ, हाथों में माला, कमंडलु, डमरु, त्रिशूल, शंख तथा चक्र का धारण करके साक्षात् ब्रह्म विष्णु तथा शिव त्रिमुखों से वेदांत का प्रवचन देते हुए, सत्संग करने से संतुष्ट होने वाला, हे दत्ता! तुम्हे प्रणाम करता हूँ।

इदं ममेति प्रविजल्पवत्यां,
गच्छद्गमिष्यद्गतजीवकोट्याम्।
केनापि किञ्चि न्नहि नीत मत्र, सर्वं स्थिरं दत्तधनं जगद्यत्॥१०६॥

यह मेरा है बकने वाले, चलेगा चला था तथा चलते रहने वाले इस जीवलोक कोटी में कोई भी कुछ भी यहाँ से लेके नहीं जाते, क्यों कि यह समस्त जगत दत्त के अचल संपत्ति रुपी धन है।

नामाक्षराणि चत्वारि, दत्तात्रेयेति जीविनाम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां, चतुर्णां सत्फलानि हि ॥१०७॥

दत्तात्रेय नाम के चार नामाक्षर जीवों के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रुपी चतुर्वर्गो के परिणाम रुपी सत् फल ही है।

दत्तात्रेय! नमोनमोऽस्तु भवते भूयो नमस्ते नमो,
भुयोऽपि प्रणतिः पुनः पुनरिदं साष्टाम्गदण्डं नमः।
त्वत्सेवा परमाणु रेव हि कृता शक्त्या तवैषा मया ,
दत्तं तत्फल मद्रि रेव भवता त्वद्दक्षिणा ह्यद्भुता ॥१०८॥

हे दत्तात्रेय! तुम्हें प्रणाम। प्रणाम। बार बार तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम्हें दंडवत् प्रणाम करता हूँ। तुम्हारी शक्ति के कारण मैं ने जो सेवा की है, वह परमाणु मात्र ही है। उस सेवा से तुम खुश होकर पहाड जैसा फ़ल दिया। तुम्हारी करुणा अद्भुत है ना।

त्रिमुखत्रिगुणो जीवः, षड्विकार करं वपुः ।
ताभ्यां दत्तं परब्रह्म,नोह्य मूह्योपधीक्षितम्॥१०९॥

त्रिमुख ही त्रिगुण है। षड्विकार ही छः हाथ है। इस प्रकार सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर सूचित किये जा रहे हैं। इस तरह दर्शन के अनुकूल उपाधि द्वारा तर्कातीत परब्रह्म दत्त होकर दिखाई दे रहा है।

उदुम्बरतरो रथ स्स्थितमनङ्ग कोटित्रय-
स्वरूपनवमोहनं शृतिसदर्थसन्दर्शकम्।
कषायरुचिरांशुकं सुनिकषोपलं चार्थिनां,
स्मरामि मुनिशेखरं त्रिमुख मत्रिवंशोद्भवम्॥११०॥

औदुंबर पेड के नीचे आसीनस्थ, तीन करोड मन्मथों की सुंदरता से नव मोहन, वेद के सत्यार्थ को प्रदर्शित करने वाला, चमकनेवाले केसरिया वस्त्र धारक, आश्रित भक्तों की परीक्षा लेने में कसौटी कसनेवाला, त्रिमुख, अत्रिवंश के संभव मुनिशेखर, दत्त का स्मरण करता हूँ।

ब्रह्मवंशजलधे स्समुत्थितं, पूर्णचन्द्रतिथिकालसम्भवम्
।
चन्द्रबिम्बवदनत्रयोज्ज्वलं, चन्द्रसोदर मुपास्महे
वयम्॥१११॥

ब्राह्मण वंश समुद्र से उद्भव होने वाला, पूर्णिमा तिथि के समय में जन्म लेने वाला तीन चन्द्रबिंब जैसे मुखों से

प्रकाशित होने वाला और चन्द्रसहोदर दत्त की उपासना करते है।

गुरो दत्त! प्रभो दत्त!, श्रीदत्तेति स्मरन्ति ये।
रमन्ते विलपन्तो ऽपि,जगन्नाटकवेषिणः ॥११२॥

जो गुरु दत्ता! प्रभु दत्ता! श्रीदत्ता! कहकर स्मरण करते हैं, वे इस जगन्नाटक के पात्रधारि समझकर, कष्टों से दुःखी होते समय भी रमित होते हैं।

दत्त स्सद्गुरुमन्दरः श्रुतिरपि क्षीरार्णव श्चाश्रिताः,
देवा ज्ञानिन ऐहिका दितिसुता स्तद्भक्तिभावः फणी।
तत्सेवा मथनभ्रमः क्षयकरो भोगस्तु हालाहलं,
तद्योगोऽप्यमृतं सुदर्शन मिदं छायामतच्छेदकम्॥११३॥

दत्त सद्गुरु ही मंदर पर्वत है। वेद ही क्षीरसागर है। ज्ञानी ही आश्रित देवता है। ऐहिक वरदान पूछने वाले ही राक्षस है। दत्त की भक्तिभावना ही आदिशेष है। दत्त सेवा ही समुद्र मंथन है। नाश करने वाले तथा भोगभाग्य देने वाले वरदान ही हालाहल विष है। दत्त योग ही अमृत है। अज्ञान मतों का छेदन करने वाले यह अच्छा दर्शन ही (मत) सुदर्शन चक्र है।

पशुजन्म भविष्य मेव योग्यं, सततााहारसुषुप्तिमैथुनस्य।
यदहेतुदया तवास्ति दत्त! प्रभवेयं मनुजः पुनः पुनर्वा
॥११४॥

हे दत्ता! हमेशा आहार, निद्रा तथा मैथुनरत रहने वाले मेरे लिए अगला जन्म पशु जन्म ही सही है। लेकिन तुम्हारे अकारण दया के कारण मैं बार बार मानव जन्म ही पा सकता हूँ ना।

गुरो! गुरूणा मपि दत्त सद्गुरो! महोदधे स्तारय सङ्कटोत्कटात्।
न ते ह्यसाध्यं किमपि प्रभो!यतः,त्वदीय सङ्कल्प मयं जगतत्रयम्॥११५॥

गुरुओं के गुरु! दत्त सद्गुरु! इस महान संकट समुद्र से पार कराओ। हे प्रभू! तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं हैं। क्यों कि यह समस्त जगतत्रय तुम्हारे संकल्प मात्र ही है ना ।

अहं महापापमयोऽपि दत्त! त्वमप्यसि श्लाघ्यतमः पवित्रः।
दयां मयि स्थापयसि त्वदीयां, किं कारणं? वारणव च्चरामि ॥११६॥

दत्ता! मैं महापापि होने से भी, तुम परमश्लाघ्य पवित्र होते हुए भी, मेरे ऊपर स्थिर रुप में दया रख रहे हो। इसका

कारण क्या है? फ़िर भी मैं हाथी जैसे खुल्मखुल्ला घूम रहा हूँ।

भूमिं कर्षति लाङ्गलेन बहुधा वर्षोक्षितां कर्षको,
बीजन्यासफलोपपत्तिकलया ह्येवं गुरो ! दत्त!मे।
बुद्धिं भिन्दि वचोभि रात्मकरुणा सिक्तां च तत्वार्पणां,
निर्वाणान्त फलेच्छया भवति त त्कृष्णाभिधानं प्रभो!
॥११७॥

कर्षक बारिश में हल से भीगी हुई जमीन को जोतकर बीज बोकर फ़सल उगाता है।गुरु दत्ता! ऐसे ही मेरी बुद्धी को तुम्हारें उपदेशों से जोत कर, तुम्हारी करुणा से भिगोकर, तत्व को बोकर निर्वाण रुपी अंतिम फ़ल को प्रदान करने केलिए चुन लिया। अतःहे प्रभू! तुम्हे कृष्ण नाम आया।

आजानुपर्यन्तपुराणवस्त्रं,
कक्ष्यान्तरस्थापितदर्भपुञ्जम्।
हस्ताम्बुपात्रं घनधूळिपादं, तंयाचकब्राह्मणदत्त
मीडे॥११८॥

घुटनों तक पूरा न पडने वाली पुरानी धोती पहन कर, काख में कुशपरिंदा रखकर, हाथ में पानी के लोटा से, खूब धूली युक्त पादों से याचना करने वाले ब्राह्मण जैसे दिखने वाले दत्त की स्तुति करता हूँ।

रामकृष्णादयो लोके, पूज्यन्ते स्वर्ण भूषणाः।
याचकै र्याचके दत्ते,दृष्टे तेऽपि पलायिताः।
दाने दत्तस्य तेनैव, परीक्षार्थं तथेक्ष्यते।
अन्यथाऽयं प्रभुस्त्वेक – जृम्भविष्कृतमेरुकः ॥११९॥

लोक में सोने की गहने पहनने वाले राम कृष्णादि देवताओं की धनयाचना करने वाले याचक पूजा करते हैं। अपने को याचना करने वाले दत्त इस याचक पोशाक में दिखते ही भाग रहे हैं। खुद उनके द्वारा दीगई संपत्ती से उसे दान देते हैं या नहीं? यही परीक्षा लेने केलिए दत्त याचक रूप में दिखाई दे रहा है। परंतु, सच में उनकी एक जंभाई सोने का पहाड मेरुपर्वत की सृष्टि करता ही है ना।

दत्तात्रेय महं वन्दे,सुन्दरं मन्दहासिभिः।
कुन्दारविन्दसन्दोह-स्पन्दानन्द मुखेन्दुभिः॥१२०॥

सफ़ेद मुस्कान के साथ लाल मुख रुपी चंद्रमा से निकलने वाली चमेली(दांत) तथा कमल (अधर) के प्रकाश समूहों से छलकने वाले आनंद युक्त दत्तात्रेय को प्रणाम करता हूँ।

श्रीदत्तपण्डितं पश्य, खण्डितप्रतिपक्षकम्।
ब्रह्माण्डाखण्डलं ज्योति-श्चण्डमण्डलमण्डितम्॥१२१॥

विपक्ष धर्म का खंडन करने वाले, ब्रह्मांड के इंद्र, तीव्र गति के तेजस चक्र से अलंकृत श्रीदत्त पंडित को देखो।

उन्मत्तप्रेमराशि र्निगमवचनसत्तत्त्वबोधैकभानुः,
भक्तार्थं प्राणदाता भुवनखलजनप्राणवातापनेता ।
धर्माधर्मा दतीतो निजचरणनमद्धर्म गोपालनैको ,
दत्तात्रेय श्शरण्यो मम ह्रदयसरोलोल हंसो वरेण्यः
॥१२२॥

पगली प्रेम राशी, वेद वचन के सत्यार्थ का बोधन करने वाले ऐकैक सूर्य, भक्तों केलिए प्राण देने वाले, लोक में स्थित दुष्टों के प्राणवायु को खीचने वाले, अपने चरणों पर सिर झुकाकर गोरुप में रहने वाले धर्म देवी की रक्षा करने वाले एकैक समर्थ तथा मेरे ह्रदय सरोवर में क्रीडाकरने वाले श्रेष्ठहंस श्रीदत्तात्रेय ही मेरा शरण्य हैं।

कनिष्ठं यस्य लीलायां, फलं ज्ञातु मनुग्रहम्।
न शक्नोति मतिस्तब्धो, भक्तो दत्त स्स वेद्यते।
अस्माक मेक रूप्यंतु ,लक्षरूप्याणि तस्य वै।
फलेन सह शक्तिश्च,फलभोगाय याच्यताम्॥१२३॥

जिसकी सामान्य लीला में भी उन को उससे भी कम अनुग्रह दिखाना ही नहीं होसकता, जिस अनुग्रह के फ़ल को जानने के बाद भक्त की मति स्थब्ध हो जाती है, वही दत्त माना जाता है। हमारी भाषा में एक रुपया उनकी भाषा में एक लाख के समान है। अतः उन से फ़ल की याचना करने से पहले उस फ़ल को भोगने की शक्ति की भी याचना करना चाहिए।

अक्षराणि हि चत्वारि, दत्तात्रेयेति जीविनः।
रथाश्वा इव कृष्णस्य, गमयन्त्यक्षरं सुखम्॥१२४॥

दत्तात्रेय नामक चार अक्षर, कृष्ण के रथ को बांधे गये चार अश्व जैसे जीवों को अक्षर रूपी सुख प्रदान करते है।

चिद्विद्युच्चलधान्यपेषणमहायन्त्रं जडो मानव,
स्तद्यन्त्रव्रजचालको नरवरो दत्त स्स्वतन्त्रः खलु।
सा विद्यु ज्जडशक्ति रेव जडयन्त्रंद्रव्यरूपान्तरा,
चिच्छक्ति श्च तथाऽपि नान्य दुपमा लोकेऽस्ति दत्तस्य ते॥१२५॥

यह मानव जड़ है, जो चेतना रुपी बिजली से चलता है, वैसे ही अनाज को आटा पीसने वाले यंत्र भी बिजली से चलता है, वह भी जड ही है। इस प्रकार अनेक यंत्रों को चलाने वाले स्वतंत्र मानव ही दत्त है। बिजली भी एक जड शक्ति ही है। जड लोहे से निर्मित यंत्रों के पदार्थ रुपी द्रव्य भी जड शक्ति का रुपांतर ही है। उसी प्रकार चेतना भी सच में जड शक्ति ही हैं। इस चेतना को दत्त रुपी तुम से तुलना नहीं करेंगे तो इस लोक में तुम से तुलना करने केलिए कोई उपमान ही नहीं बचता है(अर्थात् चेतना दत्त नहीं है, परंतु चेतना दत्त का अच्छा उपमान है)।

ज्ञानन्यासा द्विशदविषये विस्तराद्दोषदण्डात्,
स्पर्थाऽभ्यासा त्सशममनना न्निद्रया सारयोगात्।
त्रैगुण्यार्थं गुरुवरगुरूं वेदसंवेष्टिताङ्घ्रिं,
दत्तात्रेयं भज भज भज ब्रह्मविष्णूग्ररूपम्॥१२६॥

ज्ञान का बोध और स्पर्धा से युक्त विद्याभ्यास रजोगुण ब्रह्मतत्व है। उस ज्ञान को समझाने केलिए विस्तार से कहना, सहन शक्ति से मनन करना सत्त्वगुण विष्णुतत्व है। उस ज्ञान के आचरण में गलती करने से दंड देना, नींद से बुद्धि को बल देना तमोगुण रुद्रतत्व है। इस प्रकार त्रिगुण रूपी गुरुस्वरुप का उपयोग करते हुए गुरुओं के गुरु दत्तात्रेय का भजन करो। भजन करो। भजन करो।

झष इव बडिशाग्रे मत्तहस्तीव गर्ते, विषयवलयबद्धो
मायया कर्षितोऽहम्।
सकरूण मयि दत्तात्रेयदेवात्र मोक्षं,प्रदिश दश दिशां त्वं
ह्येकदृश्यो दृशां मे॥१२७॥

कांटे में शिकार के रुप में फ़से हुए मछली जैसे, गड्डे में गिरा हुआ मदमत्त हाथी जैसे, माया से आकर्षित इस विषय वलय में बद्ध हूँ। हे दत्तात्रेय देवा! तुम कृपाकरके मुझे यहाँ मुक्ति दे दो। दशदिशाओं में फ़ैलने वाले मेरी दृष्टियों को तुम ही एकैक गति के रुप में दिखाई दे रहे हो।

मद्योन्मदाय विचलारूणलोचनाय,
गर्जच्चतुश्शुनकसम्भ्रमसंवृताय
दत्ताय मत्तवचसे गुरूशङ्करेण, चण्डालरूपकलिताय
नमो नमस्ते ॥१२८॥

शराब की मस्ती से मदमत्त, लाल आँखे घुमाते हुए, घेरे हुए चार कुत्तों की भैंक से हलचल मचाते हुए, पागल जैसे बात करते हुए तथा शंकराचार्य को चंडाल के रुप में दर्शन देने वाले दत्त को मैं प्रणाम करता हूँ।

चण्डालापसरेति शङ्करवचोयोगानुयोगः कृतः,
किं देह स्समपञ्चभूतविकृतोऽप्यात्मा नु सर्वस्थचित्।
गन्तव्य स्स इति स्पुर त्तटि दुपक्षिप्तोऽपत् त्पादयो,
र्यस्याष्टाङ्गविधेन शङ्करगुरू स्तं दत्त मालोकये ॥१२९॥

शंकराचार्य ने कहा कि ‘हे चंडाला! बाजू हटो’। सुनते ही चंडाल ने प्रश्न किया कि ‘सभी शरीर जैसे पंचभूत युक्त इस देह को या सभी आत्माओं के रुप चैतन्य को हटाऊँ? किसे?’ चंडाल के यह प्रति प्रश्न सुनते ही बिजली के झटके जैसे लगने से शंकराचार्य ने जिस के पादपद्मों पर गिरकर दंडवत् प्रणाम किया, उस दत्त को देख रहा हूँ।

काश्मीरशाटीकलिताय भूयो,
माणिक्यवत्काञ्चनकुण्डलाय।
नमोऽस्तु काशीपुरपण्डिताय , दत्ताय हृत्तामस
खण्डनाय॥१३०॥

शंकराचार्य उस प्रकार प्रणाम करते ही, चंडाल रुप छोडकर, काश्मीर शाल को अपनी भुजावों पर रखने वाले, लाल माणिक्य से युक्त सोने के कुंडल चमकते हुए, शंकराचार्य के हृदय तमोगुण रुपी अज्ञान का खण्डन करके ज्ञान का बोध करते हुए दिखने वाले उस काशी पंडित दत्त को फ़िर प्रणाम करता हूँ।

सेवायां कलिपूरूषस्य नियतो ज्ञानप्रतिस्पर्धिनः,
सङ्ग्रामे विजितोऽन्धकारविषये कारागृहे स्थापितः ।
यावज्जीवित दास्यदायकभटै राकर्षितो दुर्गुणैः,
संमोहायसशृङ्खलाकुलवशो जीवामि दत्तप्रभो! ॥१३१॥

मेरे ब्रह्म ज्ञान रुपी राजा के साथ युद्ध करके कलिपुरुष जीतकर, युद्ध में हारे हुए सैनिक रुपी मुझे विषय वासनाओं के अंधकार रुपी जेल में बाँधने से मैं जन्मांत तक कलि सेवा में जीवन भर गुलाम बनकर कलिसेवक रुपी दुर्गुणों से तथा मोह रुपी लोहे के जंजीरों से बाँधकर रोज़ खींचकर लेजाते हुए जीवित हूँ। हे दत्तप्रभू! करुणा दिखाओ।

दत्त! ते ज्ञान खड्गेन, छिन्दि खड्गमृग प्रभो!
पञ्चभूतमतिं जीवं, पञ्चास्यं पदवीमदम्॥१३२॥

गैंडा जैसे हे दत्त प्रभू! पंच भूतों से युक्त मति के साथ, संसार की वासनाओं से, पद के मद में रहने वाले इस जीव रूपी सिंह को तुम्हारे ज्ञान रूपी खड्ग से संहार करो।

सर्वा न्देवा न्सर्वकामानुभोगान्, सर्वा न्जीवा न्सर्वबन्धा न्विहाय।
ऐकं दत्तं त्वां शरण्यं प्रपद्ये,ज्ञातं तत्त्वं ह्यन्तिमे वार्धके वा॥१३३॥

सर्व देवता, सारी इच्छाएँ, सारे भोग, सारे जीव और सारे बंधनों को त्यागकर दत्त रूपी सिर्फ तुम्हें शरण ले रहा हूँ। कम से कम इस अंतिम बुढापे की दशा में सच्चा ज्ञान बोध हुआ है ना!

सङ्कल्पमात्रमपि ते जग दस्ति सर्वं, पापं भवे दपिच पुण्यमयि त्वदिष्टे!
त्वच्छासनं प्रथमधर्म मनु त्वदिच्छा,नित्यं ततो भयमिदं महदेव देव! ।१३४॥

हे देवा! दत्ता! यह समस्त जगत तुम्हारे संकल्प मात्र ही होते हुए भी, तुम संकल्प करोगे तो पाप भी पुण्य के रूप में बदलना ही है, फिर भी तुम ने सृष्टि के आदि में जो प्रबंध किया, तुम्हारी आज्ञा रूपी धर्म शास्त्रों के अनुसार

ही वह संकल्प हमेशा होते रहते हैं, अतः मुझे अपने पाप, पुण्य के रूप में नहीं परिवर्तित होने का अति भयंकर डर लग रहा है(अर्थात् अंत के परिहार से आरंभ के निवारण उत्तम है।

फलं हि कष्टं मम पापकर्मणः, त्वदीप्सिताज्ञा मनु भोग्य मेव हि।
अतो गुरो! दत्त! निवारकं ह्यघात्, ददासि मे ज्ञान मुपाय मादिमम्॥१३५॥

मेरे पापकर्मों का फ़ल ही ये कठिनाई हैं। तुम्हारे संकल्प तथा आज्ञा रूपी धर्मशास्त्र के अनुसार इन कठिनाईयों को झेलना ही पड़ता है। सच में, ये पापकर्म ना करने का ज्ञान ही मूल उपाय है। इसलिए गुरु रूप हे दत्त! उस तरह के ज्ञान को ही मुझे प्रदान कर रहे हो।

इदं रहस्य मज्ञाय, पापनाशक्रियाकराः।
कलौ जीवन्त्यमी विप्राः,जीवन्तु ज्ञानबोधकाः ॥१३६॥

यह रहश्य मालूम न होने के कारण किये गये, पाप कर्मों को हटाने केलिए, जप, हवन आदि कर्मकांड करते हुए ये ब्राह्मण लोग उसके द्वारा पाने वाले दक्षिणाओं से जी रहे हैं। परंतु वे ज्ञान बोध करने से मिलनेवाली गुरुदक्षिणा से भी जी सकते हैं ना।

भोक्तव्या पापशिक्षा हि, भवान्ये तद्वचोऽक्षयम्।
कुसीदा दधिका तस्मात्,गुरूदत्तः प्रपद्यताम्॥१३७॥

दत्तदेव की बातें ही धर्मशास्त्र हैं। उनका अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। इसलिए पाप के दंडों का भोगना जरूरी है। अगर दत्त की कृपा से उस दंड को रोका तो भी, अगले जन्म में सूद के साथ उस दंड को भोगना ही है। अतः पाप ना करने का ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु दत्त का आश्रय पाना ही है।

न केवलं भविष्यं हि, भूतं पापं च दह्यते।
ज्ञानेन विनिवृत्तस्य, शिक्षोद्देश स्स ऐव हि॥१३८॥

ज्ञान से आचरण में परिवर्तन आता है। इसलिए भविष्य में पाप कर्म नहीं होगा इस परिवर्तन केलिए ही दंड है। जब सच्चा परिवर्तन हुआ तब इसके पहले किये हुए पाप भी रद्द हो जाते हैं।

मा दत्त मनुकुर्यात्तं, अवतीर्णं विभेदतः।
स धर्मा दधिको राजा,वाचो वक्ता न किं परः? ॥१३९॥

जब दत्त भगवान कृष्ण आदि नरावतार धारण करके आये तब वे कोई अधर्म करेंगे तो भी कोई पाप नही लगेगा। उस को देखकर तुम अगर पाप करोगे तो सियार कितना ही रंग बदले तो भी शेर नहीं बनता जैसे तुम निष्पाप नहीं होगे। इसलिये उनका अनुकरण करना

नहीं चाहिए। उनकी बातें ही वेद धर्म है। बातों से भी बढ़कर बात करने वाला ही महान हैं ना? राजा दंड देकर उसे बदल भी सकता है। परंतु दंड भोगने वाले दोषी को उस तरह की शक्ति नहीं हैं ना। अतः जीव अलग है ईश्वर अलग है।

शक्त्या च हेतुना केन, न ज्ञेयेन च धर्मिणः
नानुकर्म बहिर्जीव-साम्या दन्त रगोचरात्॥१४०॥

वाक् को बदलने की भगवान की शक्ति ही केवल कारण नहीं है। उन के कार्यों के कारण हमे मालूम नहीं होता। अगर वह मालूम होता तो उनके हर कार्य धर्म के रूप में बोध होता है। बाहर दिखाई देनेवाले नराकार जीवतत्व मुझे भी हैं, सोच कर भ्रमित होकर उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। उनके अंदर जो तर्क के अतीत परमात्म तत्व है वह तुम्हारी बुद्धि से परे है ना। इसीलिए तुम कभी भी कृष्ण जैसे परमात्मा नहीं होगे।

ईषणात्याग बोधश्च, परीक्षा प्रत्ययस्य च।
जारचोरस्य गोपीना, मृषीणां न ततः परम्॥१४१॥

कृष्णावतार में जार चोरादि कर्मों के द्वारा धनेषणा (वित्त रुपी मक्खन का मोह) तथा दारेषणा (पति पत्नी मोह) का त्यागने का बोध कराने के साथ साथ, गोपिकाओं के रुप में स्थित ऋषियों को खुद को पहचानने की शक्ति का

परीक्षण ही इन में निहित अंतरार्थ हैं। गोपिकाओं को छोडकर जाने के बाद उस तरह के काम नहीं किया गया। इसलिए उसे उन के चंचल स्वभाव के रुप में सोचना नहीं चाहिए।

राघवाद्यवातारेण, जीवकर्तव्यबोधकः ।
तस्य पूर्णस्वतन्त्रार्थ - तत्त्वं कृष्णादि रूपतः ॥१४२॥

दत्त ने राम आदि अवतारों द्वारा यह बोध किया कि जीव को किस तरह व्यवहार करना है? कृष्ण आदि अवतारों द्वारा यह बताया कि भगवान पूर्ण स्वतंत्र है।

यो जीवेश्वरयो र्भेद, स्स ऐव रामकृष्णयोः।
बाह्यरूपेण चाद्वैतं, द्वैत मंत स्तथा नृणाम्॥१४३॥

राम और कृष्ण में जो भेद है वही जीव तथा ईश्वर का भेद है। बाह्याकार में अद्वैत हो तो भी अंतःतत्व में द्वैत है। इसी प्रकार नर और नरावतार के लिए भी अद्वैत और द्वैत है। इस बाह्य नर रुप अद्वैत और आंतरिक रुप द्वैत (राम का जीव स्वभाव और कृष्ण का परमात्म स्वभाव) दोनों को भी अंतरंतर में फ़िर अद्वैत (दोनों भी भगवान) है। इस अंतरंतर अद्वैत का प्रस्ताव इस श्लोंक में नहीं है।

न मत्तः पर मज्ञानी, जीवदृष्ट्या सुपर्णयोः।
न मत्त श्च परं ज्ञानी, दत्तदृष्ट्या द्विधोत्तमः ॥१४४॥

मुझ से बढ़ कर बड़े अज्ञानी कोई नहीं है। दोनों पक्षियों में से जीव पक्षी की दृष्टि से यह सत्य है। परमात्मा रूपी पक्षी की दृष्टि में मुझ से महान ज्ञानी कोई नहीं है। इस प्रकार देखा जाय तो दोनों पक्षों में भी मुझ से बढ़ कर महान व्यक्ति कोई नहीं है।

द्वौसुपर्णौ तरौ देहे, सुपर्णं परमं स्तुमः ।
षाग्डुण्य जीव मपरं, दृश्यं द्वारायितं नुमः ॥१४५॥

"द्वा-सुपर्णा" नामक मंत्र के अनुसार, इस देह रुपी वृक्ष में दो पक्षी नरावतार में उपस्थित हैं। इन में से परमात्मा रुपी पक्षी की स्तुती करेंगे। दूसरे जीव पक्षी काम क्रोध आदि षडगुणों से भ्रष्ट होने से भी अदृश्य रुप में परमात्मरुपी पक्षी का संकेत देने वाले द्वार के रुप में रहकर सेवा कर रहा है। इसलिए उसे भी प्रणाम करना है।

जीवयो र्गौरवाक्षेपौ,रामभार्गवयो रपि।
माऽवतारस्पृहा त्वेवं, उपदेशोऽथलीलया॥१४६॥

नारावतार में अतिसमीपता होने से भी जीव पक्षी के गुण दोषों के आधार पर अच्छा फ़ल और दण्ड मिलते हैं। रामावतार में जीव के सत्त्व गुण के कारण निरंतर

आदर सम्मान तथा परशुरामावतार में जीव के रजसतमों गुणों के कारण अपमान मिला है। अतः अवतार में आने का अवसर मिलने पर भी जीवों को कोई फ़ायदा नहीं है। परन्तु अवतार में रहनेवाले जीव पक्षी के दुर्गुणों को दण्ड दिया गया। इसका प्रधान उद्देश्य है अन्य जीवों को उपदेश देना। अर्थात् जब खुद अवतार में होगा तब उस में स्थित जीव को भी दुर्गुणों केलिए दण्ड मिल रहा है। इसलिए कोई भी जीव भक्ति के द्वारा भगवान के जितने भी नजदीक हो तो भी अपने पापों केलिए दण्ड भुगतना ही है। यही अवतार द्वारा जीवोपदेश का मुख्य उद्देश है। यदि नरावतार में जीव दुर्गुणों का दण्ड भोगना ही एक प्रकार की लीला मानने पर भी उसके द्वारा उसकी बुद्धि में जब तक परिवर्तन नहीं आता तब तक उसे इस सत्य का बोध भी नहीं होता कि भगवान की समीपता में रहते हुए भी कर्मफ़ल से छुटकारा नहीं मिलती। इस सत्य का बोध कराना ही परम तात्पर्य है। इस सिद्धांत में कोई अडचने नहीं आती। इसलिए लीला भी ज्ञान का एक उपदेश दे रहा है।

रामेऽप्यन्यभवाघातः प्रियार्ते कृष्णकर्म तु।
परस्य जारचोरादि, पूर्वोक्तं मुक्तिदायकम्॥१४७॥

रामावतार में जीव पक्षी खुद को जितना भी समर्थन करता तो भी सीतान्वेषण की अत्यासक्ति से पेड़ के पीछे से अधर्म रूप में वाली का वध करने के कारण अगले जन्म में किरात के हाथ में मृत्यु दण्ड को भोगना भी ईश्वर का निर्णय ही है ना। परंतु कृष्णावतार में जार चोरादि कर्मों का फ़ल नहीं मिला क्यों कि वह परमात्म रूपी पक्षी का कार्य है। ऋषियों ने अगले जनम में मोक्ष की प्रार्थना की। उस केलिए जब गोपिकाओं के रुप में वे जन्म लिया तब उनके माखन को चुराने से धनेषणा, रासक्रीडा द्वारा दारेषणा की परीक्षा ली गयी। अर्थात किसी भी तरह का स्वार्थ दोष नहीं है। अतः इस केलिए दण्ड देने का प्रसंग ही नहीं उठा।

न सिंधु स्स्वां वेला मतितरति नाप्यग्निशकलाः,
स्पृशन्ति प्रक्षिप्ताः गगनतलवेगोद्धतचराः ।
स्वकक्ष्यायां नोर्वी भ्रमण मपि मुञ्चत्यविरतं,
तवेच्छा मेकाज्ञा मनुसरति सर्वं जगदिदम्॥१४८॥

समुद्र अपने किनारे पार करके नहीं आता। आकाश में अनेक खगोल शकल दहकते हुए कितनी भी तेजी से संचरित हो रहे हैं, फिर भी भूमि को छू नहीं रहे। भूमि हमेशा अपने कक्ष्य में अपनी परिक्रमा लगाते हुए सूर्य

की भी परिक्रमा करना छोडती नहीं। सर्व जगत तुम्हारे इच्छानुसार ही तुम्हारी आज्ञा का ही पालन कर रहा है।

कृतज्ञता केवल मेव दृश्यतां, न वै भव द्भावि भव त्युमापते! ।
स्वकर्मणीदं विपरीत मुच्यते, गतं न पश्य न्गतिगम्य मञ्चतु ॥१४९॥

हे उमापति दत्ता! तुम्हारे विषय में सिर्फ की गई सहायता को याद करके कृतज्ञता व्यक्त करना है। परंतु वर्तमान इच्छाओं के भविष्यत् फल सोचना नहीं चाहिए। लेकिन जीव अपने कर्तव्यों के प्रति मात्र इस के विपरीत रहना चाहिए। जो बीत चुका है उसे छोड़कर वर्तमान तथा भविष्य को ही देखना है।

उमापति र्वाऽथ रमापतिर्वा, वाणीपति र्वा त्व मनूह्य ऐकः ।
नामानि तानि त्रिगुणक्रियासु ,त्वदीय शक्ते रिति तत्त्वबोधः ॥१५०॥

उमा पति या रमापति या वाणी पति कहकर बुलाए तो भी तर्कातीत तुम अकेले हो। त्रिगुण कर्म रूपी सृष्टि स्थिति तथा लय के कर्मों में काम करनेवाली तुम्हारी शक्ति ही वाणि, रमा, उमा कहकर बुलाया जा रहा है। यहीं दार्शनिक बोध बनता है।

रजो हि जगत स्सर्गः, सत्त्वं च स्थिति पालनम्।
तम श्च प्रळय स्त्रीणि, कर्माणि त्रिगुणा इति ॥१५१॥

इस जगत् की सृष्टि ही रजो गुण है, इसकी स्थिति पालन ही सत्त्व गुण है, इसका प्रलय रुप ही तमस है। ये तीन काम ही त्रिगुणों के रुप में कहा जाता है।

काषायवस्त्रं परमं पवित्रं
यतस्त्वया धार्यत ऐतदेव।
महर्षयोऽप्यादरणीयगण्या
यतोऽभवत् तेषु भव स्तवैव ॥१५२॥

तुम धारण करने के कारण कषाय वस्त्र (केसरी वस्त्र) पवित्र बन गया है, परन्तु उसे धारण करने से तुम पवित्र नहीं बना। ऐसे ही महर्षियों को आदर सम्मान मिलने के कारण तुम हो। क्योंकि तुम उन में जन्म लिए हो। लेकिन तुम उन में जन्म लेने के कारण तुम आदर सम्मान के पात्र नहीं बने हो।

कलांशावेश पूर्णादि - नरकोट्यवतारकाः।
दत्तस्य ज्ञानसारेक्ष्याः, प्रस्तुताःकेचि दत्र हि॥१५३॥

कला, अंश, आवेश, पूर्ण तथा परिपूर्ण नामक पाँच विधाओं में दत्त का नरावतार करोडों में हैं। ये नरावतार जीवों को सच्चे साधन मार्ग का बोध होने वाले ज्ञान के सार की परिक्षा के द्वारा ही इन्हें पहचान सकते हैं। क्यों

कि दानव सहित भी महिमाओं का प्रदर्शन करते हैं। उन महिमाओं से निर्णय नहीं करना चाहिए। इस प्रकार के दत्तावतारों के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तावित हो रहे हैं।

आर्ताक्रन्दनरक्षणाय कलितं भस्माङ्ग माशाम्बरं,
शूलं बिभ्रत मीश्वरं प्रकटितम् चोरौघसंहारिणम्।
श्री दत्तप्रथमावतार मनुजं पीठी पुरी सञ्चरं,
श्रीपादं प्रणमामि वल्लभपरं श्रीपादधूळेः कणः ॥१५४॥

आर्तजनों का आक्रंदन सुनते ही शूलधारण करके, भस्मालंकृत तथा दिगंबर होकर, चोरों का संहार करने केलिए प्रकट होने वाले ईश्वर के रूप में दर्शन देने वाले श्रीदत्त का पहला नरावतार पिठापुर में संचरण करने वाले श्रीपादवल्लभ को, उनके श्रीपाद धूळी कण रुपी मैं प्रणाम करता हूँ।

रूरोद काचि त्तनये विमूढे, मुमूर्षु रेना मवति स्म तस्मै।
प्रदाय विद्याः क्षणमेव यस्तं, श्री पाद दत्तं शरणं प्रपद्ये
॥१५५॥

कोई एक स्त्री, अपने मूर्ख पुत्र के बारे में चिंता करते हुए मर जाने केलिए रो रही थी। उस पुत्र का एक क्षण में समस्त विद्याओं से अनुग्रह करने वाले उस श्रीपाददत्त का शरण पा रहा हूँ।

वन्दे मुण्डितमस्तकावृतलसत्काषायवस्त्राञ्चलं,
रूद्राक्षस्रज मादधान मुरसा साक्षा न्महाशङ्करम्।
श्रीपादा दपरावतार मवना वेतं तनुं मानुषीं,
संन्यस्तं नरसिंहपूर्वकसरस्वत्याख्य योगीश्वरम्॥१५६॥

मुंडित सिरपर केसरिया वस्त्र के अंचल को लपेटकर रखने वाला, वक्षस्थल पर रुद्राक्षमालाओं को पहनने वाला, साक्षात् महा शंकर, श्रीपादवल्लभ के बाद मानुषशरीर का आश्रय लिया गया दूसरा अवतार तथा सन्यासी नरसिंहसरस्वति नामक योगीश्वर को प्रणाम करता हूँ।

भिक्षां शाकदळां समर्पितवतीं भुक्त्वा दरिद्रेण तां,
उत्पाट्याङ्गणशाकपत्रलतिकां याते यतीशे त्वयि ।
तन्मूलप्रतिरोपणाय खननारम्भे तु कुम्भद्वयं,
सौवर्णं सधनं समीक्षित महो ! पूर्वाशने! वारिद !
॥१५७॥

कोई एक गरीब द्वारा सिर्फ़ हरी सब्जी को पकाकर भिक्षा के रूप में समर्पण किया गया तो उसे खाकर जाते समय वह हरी सब्जी देने वाली लता को उखाडकर यतीश्वर के रुप में (नरसिंह सरस्वती) जब वहाँ सें तुम निकल गये हो, तब वह गरीब दुःखी होकर उस लता को दुबारा गाढ़ने केलिए वहाँ खुदाई की तो धन से भरे हुए दो सुवर्ण भांड

दिखा। आहा! तुम पहले गाज गिराते हो बाद में ठंडेपन के साथ बारिश देने वाले मेघ हो।

यस्योत्सर्गमलं हिरण्य मभव द्यज्ञग्निकुण्डे क्रतुः,
काम्यो हेयफलप्रदः पशुपते र्जीवो धनार्थी किरिः ।
ऐवं बोधयितुं हि बाल्य समये लीला कृता येन सा,
माणिक्यप्रभु माश्रयामि सततं तं गादिपीठ
स्थितम्॥१५८॥

जिन्होंने अपने बचपन में यज्ञ के कुण्ड में मल विसर्जन किया तो वह स्वर्ण के रुप में बदल गया, इस के द्वारा स्वर्ग आदि फ़लों को वरदान के रुप में मांगने केलिए करने वाले यज्ञ तुच्छ स्वर्ग फ़ल दायक हैं, भगवान के पास धन की आशा से पहुँचने वाले जीव पशुपति का (शिव जी) आश्रय पाकर मल भक्षक नीच पशु सुवर ही है। यह बोधन करने केलिए इस लीला का प्रदर्शन किया गया, दत्तगादि नामक आसन पर बैठा हुआ उस माणिक्य प्रभु का हमेशा आश्रय पाता हूँ।

सर्पं स्वर्ण मुपानय द्विषधनं यो लीलया बोधयन्,
सौवर्णद्युति मूर्ध्वपुण्ड्रकलितं कौपीन मात्राम्बरम्।
तं पार्श्वाङ्गशयान मच्युत महो! हस्तोपधानं क्षिता,
वक्कल्कोटपुरान्तरस्थिरमहाराजाख्यदत्तं भजे ॥१५९॥

जो साँपों को सोने की छड़ी के रुप में बदल दिया, उसके द्वारा धन विष है कहकर बोधन किया गया, सुनहरे रंग

के शरीर वाले, ऊर्ध्वपुंड्र नामों के साथ, कौपीन मात्र ही पहन कर, एक ओर जमीन पर लेटकर, एक हाथ को तकिया के रुप में रखकर हरि जैसे दिखने वाले, अक्क्लकोट नामक पुर में स्थिर निवासी महाराज नामक दत्त का भजन कर रहा हूँ।

करस्थं द्विपत्रायितं लोहदण्डं,मुहु श्चालयन्तं करे
भैक्ष्यपात्रम्।
शिरो बद्ध वालावलम्बोत्तरीयं, भजे
शिर्डिसायीशदत्तावतारम्॥१६०॥

एक हाथ में दो भागों में विभाजित लोहे की सट्का को बार बार घुमाते हुए, दूसरे हाथ में भिक्षापात्र को रखने वाले, सिर पर चोटी जैसे उत्तरीय को लटकाने वाला शिरडी साईश्वर नामक दत्तवतार का भजन करता हूँ।

केशावळीवलयमेघमहाकपर्दं, फालानलेन वसनेन
समावृताङ्गम्।
हस्तभ्रमेण नवभस्म सदा सृजन्तं, श्रीसत्यशायि
परमेश्वरदत्त मीडे ॥१६१॥

केश समुदाय के वलय मेघ का जटाजूट के रुप में, ऊपर से नीचे तक केसरिया बुरखा में फ़ालाग्नि ही नीचे उतरकर मानों शरीर आवरण होगया जैसे दिखनेवाले, हमेशा हाथ को हिलाते हुए नया नया ऊदी की सृष्टि करने वाले श्री सत्यसाई परमेश्वर दत्त की स्तुती करता हूँ।

सानन्दं, सच्चिदानन्दं,वन्दे गणपतिं मुनिम्।
गायन्तं बोधयन्तं च,दत्तपीठ मधिष्ठितम्॥१६२॥

दत्तपीठ के ऊपर आसीन होकर, गानों के द्वारा बोधन करते हुए आनंद युक्त श्री सच्चिदानंद गणपति मुनि दत्तावतार का प्रणाम करता हूँ।

अहंब्रह्मे त्यहङ्कारो, विद्वेषोऽप्यधिकेषु मत्।
अन्यावतारमर्त्येषु,मात्सर्यं योग्यसम्पदौ॥
मा मयोग्यं दयाविष्टं,दत्तं ज्ञानमहार्णवम्।
वेणुगोपालकृष्णाख्यां,वन्दे चाष्टम रूपिणम्॥१६३॥

मुझ में अहंब्रह्म नामक अंहकार, मुझ से बढकर अन्य नरावतार पर द्वेष गुण रुपी मात्सर्य नामक दो दोष ही मेरी गुण संपदा के रूप में स्थित है। परमात्मा द्वारा मुझे चुनने के लिए यही मेरी योग्यताएँ हैं।

इस प्रकार मैं अयोग्य होने से भी, अकारण दया से ज्ञान सागर दत्त, वेणुगोपालकृष्ण नामक मेरे

ऊपर आक्रोषित है। उस प्रकार के परमात्मा द्वारा वंदना करने की स्थिति आई। अतः अष्टम दत्तावतार रूपी मुझे मैं खुद प्रणाम कर रहा हूँ।(श्रीदत्तात्रेय गुरु के बोधन में एक विशष्ट पद्दति है कि दूसरों के दोषों को दिखान है तो बोधन करते समय उनको अपने ऊपर आरोपित करके बताना। इस पद्दति में दूसरों के अहंकार को चिढ़ाना नहीं होता। उसी समय वह अपनी गलती को खुद समझ कर सुधार लेता है। इस विषय को श्रीदत्तस्वामी ने अपने दिव्य संदेशों में अनेक बार बताया। उसी को यहाँ समन्वय करना है। कई लोग यथार्थ रुप में दत्तावतार न होने पर भी खुद को दत्तावतार के रुप में भ्रमित होते हुए अहंकार और असूया से व्यवहार करते हैं। उन में परिवर्तन लाने केलिए श्रीदत्तस्वामी द्वारा इस विशिष्ट दत्तबोधन पद्दति को यहाँ अपनाया गया, यहीं समझना चाहिए। अनेक भक्त गण ने दुख के साथ यह प्रश्न पूछा कि खुद अपने बारे में ऐसा क्यों लिखा? उनके समाधान के रुप में दत्तस्वामी ने स्वयं इस विवरण को दिया।)

श्रीदत्तस्वामि विरचितम्
दत्तात्रेयम् समाप्तम्

श्री दत्तस्वामी विरचित भजन

दत्तदेवं गुरुम्

अत्रिजं शंकरं ब्रह्म नारायणं।
सर्व देवात्मकं दत्त देवं गुरुम्॥
इंदिरा मंदिरं पार्वती नायकं – भारती वल्लभं धर्मधेन्वाश्रयम्।
शंखचक्रान्वितं शूलढक्काधरं – पात्र माला करं प्राणनाथं भजे॥१॥
पावनै रागमै स्सारमेयायितै: – पाद पद्मा वृतैर्मंत्र मंद्र स्वरै।
संचलभ्दिदशनै: संचलंतं प्रभुं – त्याननं षट्करं योगिराजं भजे॥२॥
केवलं निर्गुणं मूर्तिं भूतंजगत् – सृष्टि रक्षालय धारहेतो स्त्रिधा।
अत्रिणा प्रार्थितं युक्त मूर्ति त्रयं – दृष्ठमेकं पुन स्तं त्रिमूर्त्याननं॥३॥
मातृ भावानसूयाकृते गर्भजं – दृष्टबालत्रयं युक्तमेकं सकृत्।
ब्रह्मचर्य व्रतं दंडपाणिं वटुं – तापसै: प्रस्थितं वृद्ध शिष्यैर्भजे॥४॥
हंसवाहं क्वचित पक्षिराड्वाह्नं – नंदिनावा क्वचित संचरतं विभुं।
नास्तिकानां मतं नाशयंतं सदा – पंडिता खंडलं स्तौमि योगीश्वरं॥५॥

भज दत्तम्

वंदेतिरम्यं। विश्वैकगम्यं। ऊन्मत्त दत्तं। गुरुदेवं॥
वेदांत सारं। नानावतारं। भक्तोपकारं। भजदत्तं॥१॥
संसार पारं। रुद्राक्षहारं। नीहार गैरं। भजदत्तं॥२॥
काषाय चेलं। पात्राक्षमालं। आम्नायमूलं। भजदत्तं॥३॥
ज्वालाक्षि फ़ालं। ढक्कात्रिशूलं। कंठाह्निलं। भजदत्तं॥४॥
पादांत शक्रं। विछिन्न नक्रं। श्रीशंख चक्रं। भजदत्तं॥५॥
कंदर्प रूपं। सौंदर्य दीपं। योंगींद्र भूपं। भजदत्तं॥६॥
मंत्रात्म बीजं। तंत्रार्थ भाजं। श्रीयंत्र राजं। भजदत्तं॥७॥

दत्तं भावयामि

दत्तं भावयामि। श्री दत्तं भावयामि।
गुरु दत्तं भावयामि। प्रभु दत्तं भावयामि॥
धर्मो धेनु रागाद्।आम्नायास्सारमेयाः।
शंखी चक्र शूली। ढक्कावान दाम कुंडी॥

श्री दत्तात्रेय एकादश श्लोकी

श्रीदत्तात्रेयं नमाम्यहम्
गरुड, हंस, नंदि वाहम्॥
ब्रह्म विष्णु शिव मूलाधारं। वर्षित वेदांतामृत धारं।
कुंद कुशेशय कुवलय हारं। क्षणकृत जंभासुर संहारम्॥
वेदशास्त्र मथनामृत सारं। दृशैव तारित घन संसारं।
संकल्पाकृति मायाजालं। विचित्र लीला विनोद कालम्॥१॥
नमो नमो गुरु दत्ताय। ब्रह्मज्ञान वित्ताय।
अफलप्रेमोन्मत्ताय। करुणारस भर चित्ताय॥

शंख चक्र ढमरूक शूल। कुंडीमाला धारिणे, मनो हारिणे।
त्रिभुवनसंचारिणे, कुमति जनसंहारिणे। सह्याचलविहारिणे
जगत्कारिणे॥
सनकसनंदन सनत्कुमार सनत्सुजाताख्या चतुरागम सारमेयाय।
तर्कामेयाय मुनिमनोनेयाय परमध्येयाय सुंदरकायाय योगिनायकाय॥
जीवोद्धारकाय मायातारकाय धीषणा प्रेरकाय ज्ञान कारकाय
दैत्य मारकाय विपन्निवारकाय॥२॥

अत्रि पुत्र! दत्तदेव। श्रुति पवित्र! सच्चरित्र!
केलि चित्र! पुत्रमत्र! त्राहि मां शतपत्र नेत्र !
अज्ञान तिमिर भेद, पद्म मित्र प्रज्ञान चिदनघा सत्कलत्र
विज्ञान रूढ तत्व, सुधा पात्र सुज्ञानि मानवार्थ धृत मानवगात्र॥३॥

गुरु राज, राज राजं। स्तौमि श्री दत्त महाराजं।
वेदांत विषय, जगति सम्राजं। पापिभ्योऽपि दया सुधार्णव भाजम्॥
मंदार मकरंद मधुर मंदहासं। कुंदार विंद, कुमुद बृंदांशुभासं।
तिलकुसुम, समायत, मनोहरनासं। स्कंद, भार्गव, पिंगल नागादि
दासम्॥४॥

वेदनायक दत्त पादमाश्रये
आश्रित पाणिनां सद्य: खादिताखिल खेदं
ज्ञान प्रदानेन, हृदयमे, दुरित मोदं
न्यास मात्रेणैव नाशित, नास्तिक, वादं
नख कांति किरणै, रनाद्य विद्या भेदम्॥५॥

सृजंतं, शासंतं, संहारंतं। जगंति, संततं, चिंतये, श्रीदत्तंतम्॥

योग विद्या, सत्यसारं, बोधयंतंसत्य, दर्शन लालासानाकर्ष यंतं।
मानवेभ्यो, मानवाकृति, रवतरंतं अष्ट सिद्धि, भिरास्तिकत्वं
प्रतिष्टपयंतम्॥६॥

गुरुदत्त स्वयंभुवे। श्रीदत्त विष्णवे।
प्रभु दत्त शंभवे। नमो वेदांत विभवे॥
धीयां नलिनी, ना, मुदय भानवे। श्रितानां, साक्षात्कामधेनवे
अनसूया, प्रिय मद्य सूनवे। वेदसुनका वृत, चारुजानवे॥७॥

दत्त मायां कोनु, तरति।
नचे, द्दत मे नानु सरति॥
वासवादय एव तत्र गलिता। ब्रह्मर्ष योऽपि, तत्पाद पतिताः।
नाभि जानत, एवतं, नरतनुं। नरावेद, शास्त्र महा विदोअपि॥८॥

स्मरामितं, सदादत्तं। ब्रह्म, विष्णु, शंकरं, नरावतारम्॥
श्यामारुण धवल मिश्र कांतिं। वेदांत शांतिं धूत मया भ्रांतिम्॥

बहुजन्म, साधनैक साद्यं। वेदाराद्यं कालत्रया बाद्यम्।
श्रित धर्म देवता धेनुं। श्रुति शुनक वृत जानुं।
मुनि मनः कमल भानुम्॥९॥

अत्रि प्रिय, पुत्रमाश्रये। दत्तं भर्गव प्रणत चरणम्॥
ज्ञानाभरणं मायावरणं। भक्तोद्धरणं त्रिगुण करणं॥
निजानुचर वर कोटि त्रय सुरकर सेवा मोद भरम्।
अमेय शम दम समत्व मति गति विमुक्ति कर वरदम्॥१०॥

वेदांत परम दीपं ब्रह्मांड चरम भूपं।
श्रीदत्तमलिककोपं भजधावित भवतापम्॥११॥

श्री दत्त नवरत्न

नमस्ते त्रिमूर्ति स्वरूपोज्वलाय – नमस्ते त्रिधा सर्ग रक्षालयाय।
नमस्ते त्रिशक्त्याङ्गना वल्लभाय – परब्रह्म दत्ताय भूयो नमस्ते॥१॥
नमस्ते त्रिलोकादि मध्यात्ययाय – नमस्ते त्रिकालार्थ सन्दर्शनाय।
नमस्ते त्रिपुट्यर्थ सद्बोधकाय – परब्रह्म दत्ताय भूयो नमस्ते॥२॥
नमस्ते त्रिवेद स्वरोच्छारणाय नमस्ते त्रिपुण्ड्रोर्ध्व रेखामुखाय।
नमस्ते त्रिणेत्रान्तरालोकनाय – परब्रह्म दत्ताय भूयो नमस्ते॥३॥
नमस्ते त्रिधाचार्य रूपागताय – नमस्ते त्रिवेदान्त संस्थापकाय।
नमस्ते त्रिभाष्य प्रयागान्वयाय – परब्रह्मदत्ताय भूयो नमस्ते॥४॥
नमस्ते त्रिब न्धेष्णा खण्डनाय – नमस्ते त्रिकर्मेध्य दाहानलाय।
नमस्ते त्रिदेहैक मोक्ष प्रदाय – परब्रह्मदत्ताय भूयो नमस्ते॥५॥
नमस्ते त्रिपादार्थ मन्त्राधिपाय – नमस्ते त्रिमन्त्रैक मन्त्राश्रयाय।
नमस्ते त्रिवर्णैक वर्णेरिताय – परब्रह्म दत्ताय भूयो नमस्ते॥६॥
नमस्ते धरामण्डले सञ्चराय – नमस्ते चतुस्सारमेयावृताय।
नमस्ते सकृद्भिन्न रूपेक्षिताय – परब्रह्मदत्ताय भूयोनमस्ते॥७॥
नमस्ते शिवब्रह्म विष्णवाननाय - नमस्ते षडाब्जांशु पाणिं व्रजाय।
नमस्ते अनसूयात्रि पुत्रायिताय – परब्रह्म दत्ताय भूयो नमस्ते॥८॥
नमस्ते महा ज्ञान सत्पंडिताय – नमस्ते गुरु श्रेणि राजोत्तमाय।
नमस्ते महायोग पीठेश्वराय – परब्रह्म दत्ताय भूयो नमस्ते॥९॥

फलश्रुति

दत्ताय नवरत्नानां - श्लोकमालां समर्पितां

कृष्णेन पठतां सिद्ध: - श्री दत्त सदनुग्रह:

श्री दत्ताष्टकं

ब्रह्म विष्णु शिवाख्यानां। मूर्तिनां मूलहेतवे।
त्रिमूर्ति मुख पद्माय। दत्तात्रेयायते नम:॥१॥
अरुण श्यामधावळव। वर्ण मिश्रम वर्णिने।
अनसूयैक भाग्याय। दत्तात्रेयाते नम:॥२॥
शंखं चक्रं त्रिशूलंच। ढक्का मपि कमंडलुम्।
बिभ्रतेऽक्षस्रजं हस्तै:। दत्तात्रेयायते नम:॥३॥
कुर्वते भावमात्रेण। सृष्टि स्थिति लयानपि।
सर्वदेव स्वरूपाय। दत्तात्रेयायते नम:॥४॥
गुरूणां गुरुराजाय। शृतीनां शृतयेऽपिच।
शास्त्राणा मपि शास्त्राय। दत्तात्रेयायते नम:॥५॥
बालोन्मत्तवदीक्ष्याय। सर्वलीला विहारिणे।
अवधूतैक लक्ष्याय। दत्तात्रेयाते नम:॥६॥
करुणावाह्निनीमूल- वात्सल्यार्णव चक्षुषे।
आह्वानादेवा दृष्टाय। दत्तात्रेयायते नम:॥७॥
श्रितानुद्धुर्तु कामाय। कलौ सर्वगताय च।
साध्या साध्यानि ददते। दत्तात्रेयायते नम:॥८॥

फलशृति

श्रीदत्तात्रेय देवस्य पुण्यं कृष्ण कृताष्टकम्
पठतां स्यादिहमुत्र फल मीप्सित मक्षयम्
ॐ शांति: ॐ शांति: ॐ शांति:

भजे दत्त देवम्

श्री ब्रह्मदत्त

शिवश्रीशयोराननाभ्यां षडंसं चतुर्वेद मूलं जगत सृष्टि लोलम्
सरस्वत्युपेतं सरोजात वर्णं परब्रह्म मध्यं भजे दत्त देवं॥
॥ॐ नमो ब्रह्मणे॥

श्री विष्णु दत्त

विधीशानयोराननाभ्यां षडंसं घनश्याम गात्रं प्रफुल्लाब्जनेत्रम्
रमा वक्षसं रम्यरूपाभिरामं महाविष्णु मध्यं भजे दत्तदेवं॥
॥ॐ नमो नारायणाय॥

श्री शिवदत्त

हरि ब्रह्मणोराननाभ्यं षडंसं ललाटेक्षणं चन्द्रखंण्डावतंसम्
भवानी समेतं विभूति प्रभाङ्गं महादेव मध्यं भजे दत्तदेवं ॥
॥ॐ नमः शिवाय॥

न वर्णो न लिङ्गम मतं नाश्रमो नु न कोऽप्यस्ति भेदोत्र दत्तस्य मार्गे
महाज्ञान भक्तिर्महायोगसेवा विशिष्टैव सर्वत्र दत्तस्य मान्या॥

त्रिमूर्ति वदनोज्ज्वलं त्रिभुज युग्म संशोभितं
चतुश्शुनक संवृतं विमल धर्मधेनु श्रितम्
धरावलय संचरं चरणपादुका घट्टनं
महर्षि कुल नायकं नमत दत्तदेवं गुरुम्

जो तीन मुखों से और षड्भुजों से युक्त हैं और जो चार शुनकों से सेवित हैं, और धर्म धेनु को आश्रय देने

वाले हैं जो सारी भूमी पर संचरण करते हैं, जो अपनी पादुकाओं का आवाज़ करते हुए चलते हैं और जो महर्षि कुल के नेता है, उन श्रीगुरु दत्त देव की वंदना कीजिए।

नैवाष्ट सिद्धिं न च वाऽत्र कीर्तिं नापि त्वदीयां पदवीं वृणोमि
वृणोम्यहं जन्मनि जन्मनीह श्रीदत्त! ते पाद सरोज सेवाम्॥

मैं आपसे न अष्टसिद्धियाँ माँगता हूँ, न इस लोक में कीर्ति, न ही आपके समान कैवल्य पद। हे श्रीदत्त! मैं तो हर जन्म में आपके चरण कमलों की सेवा ही माँग रहा हूँ।

वंदे दत्तात्रेयं

वंदे दत्तात्रेयं, ब्रह्म ज्ञानममेयं ॥
अनसूया प्रियबालं, मुनिजनमानस पालं,
निगूढ मायाजालं, वेश्यामदिरालोलं ॥१॥ वंदे दत्तात्रेयं...॥
कार्तवीर्य गुरूवर्यं, संसार तमसूर्यं,
भक्तावन दिनचर्यं, ज्ञान प्रचार कार्यं ॥२॥ वंदे दत्तात्रेयं ...॥
आगम गीता गम्यं, काषांबर रम्यं,
अनघादैता काम्यं, ज्ञान बोध बहु सौम्यं ॥३॥ वंदे दत्तात्रेयं ...॥
काशी गंगा स्नानं, पावन तुंगा पानं,
कोल्हापुर भिक्षान्नं, सह्याचल कृत शयनम् ॥।४॥ वंदे दत्तात्रेयं ...॥

---x---

श्री दत्त स्वामी (जन्नाभट्ल वेणु गोपालकृष्णमूर्ति जी)